

# आचार्य कनकनन्दी स्वाध्यायामृत

पावन प्रसङ्ग

वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव के  
स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान के कुछ अंश

पुण्य स्मरण

मेरे (विजयलक्ष्मी के) स्वर्गीय पिताजी महेन्द्र कुमार जी सिंघवी की  
पुण्य स्मृति (देहावसान दिनांक 14.12.2007) में

ज्ञानदानी

श्रीमती विजयलक्ष्मी पत्नी श्री कमल कुमार जैन व पुत्रवधू श्रीमती सिद्धी जैन पत्नी  
श्री गुञ्जन जैन एवं सुपुत्री डॉ. दामिनी जैन, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा (राज.)

कृति का नाम - आचार्य कनकनन्दी स्वाध्यायामृत

प्रवचनकार - आचार्य कनकनन्दी

संकलनकर्त्री - कवयित्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पत्नी श्री कमल कुमार जैन

ग्रन्थांक-272

प्रतियाँ-500

संस्करण-2017

मूल्य-51/- रु.

## सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

# शुभाशीर्वाद व शुभकामनाएँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

आशीर्वाद मेरा शुभ विजयलक्ष्मी को, जो पूजा-दान सेवा करती है।  
स्वाध्याय में विशेष रुचि लेती है, कविता-लेख भी लिखती है॥ (1)

दो हजार सात (2007) से मेरे पास पढ़ती, आहारदान भी करती है।

पतिदेव कमल कुमार जैन भी, सपरिवार सहयोग करते है॥ (2)

सागवाड़ा कॉलोनी में तो करती है, बाहर ग्राम में भी करती है।

मेरे स्वाध्याय व प्रवचन को, लिखकर प्रकाशन भी करती है॥ (3)

कविताएँ भी सुंदर रचती हैं, पूजा-आरती व भक्ति को भी।

अतएव मैंने उसे उपाधि दी, 'कवयित्री' रूप में आशीर्वाद भी॥ (4)

कुमारी खुशी को भी उपाधि दी, 'बाल कवयित्री' आशीर्वाद सहित।

आहारदान व ज्ञानदान करती है, राजेश कुमार की सुपुत्री है॥ (5)

प्रस्तुत कृति में विजयलक्ष्मी ने, मेरे प्रवचनों का संकलन किया।

'आचार्य कनकनन्दी स्वाध्यायामृत', नाम से प्रकाशन किया॥ (6)

सभी को मेरा शुभाशीर्वाद है, लेखन-प्रकाशन पढ़ने वालों को।

स्व-पर-विश्व कल्याण करे सभी, ऐसी मंगल कामना कनकनन्दी की॥ (7)

'आचार्य कनकनन्दी'

सीपुर, समता धाम (राज.)

दिनांक 10.02.2017

## प्रस्तावना

मैं विजयलक्ष्मी गोदावत नन्दौड़ से लेकर पुनर्वास कॉलोनी, सागवाड़ा प्रवास तक स्वाध्याय तपस्वी सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव से प्राप्त स्वाध्याय ज्ञान का कुछ संकलन कर इस कृति में प्रस्तुत कर रही हूँ। मैं अति अल्प बुद्धि हूँ किन्तु श्री गुरुदेव के शुभाशीष से लेख, कविताएँ आदि लिख पा रही हूँ। मुझमें हिन्दी व्याकरण, भाषा संबंधी कोई ज्ञान नहीं है अतः त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है, सुधी

पाठक सुधार कर पढ़ें। मैंने इस पुस्तक में कषायों, हिंसा, निन्दा, परिग्रह, धर्म प्रदर्शन नहीं आत्म-दर्शन, दान से त्याग श्रेष्ठ, अहंकार, ममकार, विनय, उपवास, स्वाध्याय, आध्यात्म एक लाभ अनेक, दीक्षा गुरु के समान शिक्षा गुरु भी श्रेष्ठ, 'मैं', दान, साधु जीवन्त धर्म, गुरु का स्वरूप, धर्म भाव प्रधान, मनुष्य जन्म की दुर्लभता, गुरु-शिष्य की गाड़ी, आत्मा की सम्यक् संवेदना, स्वाध्याय का फल, आनंद जीव के स्वयं का स्वभाव, स्त्री शिक्षा आदि विषयों पर लिखा है।

श्री गुरुदेव ने मुझे बहुत पढ़ाया है किन्तु मैं अज्ञानी होने के कारण कुछ अंश ही लिख पाई हूँ। जिस प्रकार तीर्थंकर प्रभु की वाणी का अनंतवाँ भाग गणधर झेल पाते हैं व इसका अनंतवाँ भाग वे आचार्यों को देते हैं। इस पुस्तक संबंधी कोई प्रश्न, शंका या जिज्ञासा हो तो पाठक श्री गुरुदेव के पास आकर अपना समाधान कर सकते हैं।

वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के संघस्थ श्रमण मुनि सुविज्ञसागर, आध्यात्मनंदी जी, आर्यिका सुवत्सलमती, क्षु. सुवीक्षमती, शान्तिश्री, श्रेयांसश्री व ब्र. सोहनलाल जी ब्रह्मचारिणी संगीता व पल्लवी दीदी का सहयोग व शुभाशीष मुझे प्राप्त हुआ है।

-गुरुदेव कृपाभिलाषिणी-  
कवयित्री विजयलक्ष्मी पत्नी श्री कमल कुमार जैन

## “गुरु दर्शन से आत्मबल”

-विजयलक्ष्मी

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के दर्शन करने से आत्मबल मिलता है। मुझे सम्मोदशिखर की यात्रा से उतनी ऊर्जा नहीं मिली जितनी गुरुवर के दर्शन से मिली। जिस प्रकार भगवान् का समवशरण जहाँ लगता है वहाँ सब व्यवस्थाएँ देव आकर कर देते हैं, उन्हें इसके विषय में सोचना नहीं पड़ता उसी प्रकार गुरुवर जहाँ भी रहते हैं उनकी हर प्रकार की आहार-विहार की सब व्यवस्थाएँ नितिन भैया, प्रवीण भाई, भूपेश भाई, माँगीलाल जी आदि देश-विदेश के शिष्य, गुरुभक्त सीपुर में, नन्दौड़ में, चितरी में, हल्दीघाटी आदि जहाँ भी हो जंगल में मंगल हो जाता है। आचार्य विमलसागर जी व आचार्य कुंथुसागर जी गुरुदेव के शिष्य कनकनन्दी जी भी उनकी तरह ही वात्सल्य से ओतप्रोत हैं। विमलसागर जी गुरुदेव ने कनकनन्दी

गुरुदेव की योग्यता देखकर उन्हें महावीर कीर्ति आचार्य से शिक्षित व स्व-दीक्षित गणिनी प्रमुख विजयमती माताजी के पास अध्ययन हेतु भेजा। योग्य शिष्य को दूसरे आचार्य के पास भेजना यह भी विमलसागर जी गुरुदेव की महानता थी। विमलसागर जी गुरुदेव ने आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव को कलिकाल के समंतभद्र कहा था। उनकी उपाधि को सिद्ध करते हुए गुरुदेव ने जैन धर्म को वैज्ञानिक धर्म सिद्ध किया है व विश्व में पहुँचाया है। जैन धर्म के ग्रंथों को सभी आचार्यों ने पढ़ा है, परन्तु गुरुदेव ने विज्ञान की कसौटी पर कसकर जैन धर्म को विज्ञान से भी आगे सिद्ध किया है। क्योंकि उन्हें विज्ञान का भी ज्ञान है व सभी धर्मग्रंथों का भी ज्ञान है। गुरुदेव कहते हैं विज्ञान अभी बहुत पीछे है वह धर्म का सहारा ले तो बहुत आगे पहुँच सकता है। विज्ञान के सभी सिद्धांत आगम में कई वर्षों पूर्व लिखे गये हैं, गुरुदेव ने यह सब सिद्ध कर दिया है।

गुरुदेव जो शास्त्र लिख रहे हैं, वह जिनवाणी की वैयावृत्य है। गुरुदेव ने 1988 में ही संकल्प कर लिया था कि वह किसी व्यक्ति से कोई भी कार्य, शास्त्र छपवाने तक के लिए पैसे की माँग नहीं करेंगे। वह कभी भी किसी को भी नहीं कहते परन्तु स्वेच्छा से सब दान देते हैं। गुरुदेव के पास बड़े-बड़े वैज्ञानिक, कुलपति, प्रोफेसर, न्यायाधीश व सामान्य लोग भी पढ़ते हैं। गुरुदेव के पास महीना दो महीना भी यदि लगातार कोई पढ़ ले तो गुरुदेव को समझ सकता है, गुरुदेव के ज्ञान का अनुमान लगा सकता है। अतः स्वेच्छा से शास्त्र-दान देना चाहता है। गुरुदेव ने शास्त्र लेखन का कार्य भी आचार्य विमलसागर जी, आचार्य भरतसागर जी, आचार्य कुंथुसागर जी, ज्ञानानंद सन्मत्तिसागर जी आदि के बार-बार कहने पर तथा प्रेरणा व आशीर्वाद से किया है।

गुरुदेव बताते हैं कि कई वर्षों तक हमारे बड़े-बड़े ग्रंथ धवला, जयधवला, षट्खण्डागम आदि अलमारी में बंद रहे। उनको छपवाने तो दूर छूने भी नहीं देते थे। इसी कारण तेरह पंथ-बीस पंथ का विवाद खड़ा हुआ। जो मुख्य बड़े ग्रंथ थे वह लोगों ने पढ़े ही नहीं केवल दूर से ही दर्शन करते थे। जब शांतिसागर जी गुरुदेव को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने बड़े प्रयत्न से विरोध करने पर भी ग्रंथों को छपवाया। गुरुदेव

का ही उपकार है जो वर्तमान में यह बड़े-बड़े ग्रंथ हमें उपलब्ध हो रहे हैं। आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का उपकार है जो हमें उन बड़े ग्रंथों के गूढ रहस्यों को समझा रहे हैं तथा सरलीकरण कर हमें गद्य व पद्य में समझा रहे हैं।

गुरुदेव के ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान समुद्र में सूई की नोक के पानी की बूँद बराबर भी नहीं आ सकता, परन्तु गुरुदेव के प्रोत्साहन व आशीर्वाद का ही प्रतिफल है कि मैं गुरुवाणी का संकलन कर पायी। मुझमें कविता लिखने, लेख लिखने, पुस्तक लिखने की सामर्थ्य नहीं थी, परन्तु यह सब गुरुदेव के आशीर्वाद का ही प्रतिफल है। जिस प्रकार समवशरण में गणधर भगवान् की पूर्ण देशना को ग्रहण नहीं कर पाते, किन्तु अनंतवे एक भाग को ही ग्रहण कर पाते वैसे ही मैं गुरुदेव के स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान का कुछ ही ग्रहण व संकलन कर पायी हूँ।

## आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का स्वाध्यायामृत

गुरुदेव को मैंने बताया कि गुरुदेव आपके होने पर ही हमारी कलम चलती है अन्यथा भाव नहीं होते हैं और भी अन्य कारण हो जाते हैं सो लिख नहीं पाती।

**गुरुदेव ने मुझसे प्रश्न किया मेरे अन्य भक्त प्रोफेसर, वैज्ञानिक भी ऐसा ही बोलते हैं इसका क्या कारण है?**

मैंने जो अनुभव किया वह मैं बताती हूँ कि गुरुदेव सर्वप्रथम तो आपका आभामण्डल ही बहुत प्रभावी है, आप हमारे लिए तीर्थकर ही हो क्योंकि तीर्थकर के समवशरण आने पर चारों ओर सुभिक्ष छा जाता है उसी तरह आपके आने पर भी चारों ओर सुभिक्ष है प्रकृति भी आपका स्वागत कर रही है सभी प्राणियों में दिव्य ध्वनि समझने की क्षमता आ जाती है तो उसी प्रकार हममें भी आपका ज्ञान पूर्ण तो नहीं परन्तु कुछ ग्रहण करने की क्षमता आ जाती है। आपका ज्ञान व्यापक सब विषयों में पूर्ण होने से आप विषय को सभी दृष्टिकोण से पढ़ा व समझा पाते हैं। आप बहुत सरल व्यवहार में आने वाले उदाहरणों से समझाते हैं आपको सभी धर्मों का सभी विषयों का पूरा ज्ञान है। बहुत से व्यक्ति में ज्ञान होता है परन्तु उसको समझा नहीं पाते है। आप में यह अद्भुत कला है। आप पंचम काल के गणधर है, ऋद्धिधारी मुनि हैं। गुरुदेव हमेशा किशोर विद्यार्थी रहना चाहते हैं उन्हें अपने ज्ञान का घमण्ड नहीं है। हम अनभिज्ञ है अतः वह हमें अवगत कराते हैं कि मैंने इस विषय को यहाँ लिखा है। हम

इसे अहं समझ जाते हैं। गुरुदेव को भारत की कुरीतियों, भ्रष्टाचार, आतंक, अज्ञानता सबकी बहुत पीड़ा है। वे अपने सरल, सादगीपूर्ण, ज्ञानी (ऋषि-मुनियों की तरह) भारत को बनाना चाहते हैं वे अपने साहित्य द्वारा हमारे भारत को श्रेष्ठ व ज्येष्ठ बनाना चाहते हैं।

कनकनन्दी गुरुदेव ने नन्दौड़ गाँव में स्वाध्याय करवाते हुए बताया कि आत्म कल्याण तीन लोक में श्रेष्ठ है। प्रवचनसार का स्वाध्याय कराते हुए बताया कि दीक्षा लेने वाले व देने वाले में क्या-क्या गुण होने चाहिए। दीक्षा देने वाले आचार्य भी सर्वगुण सम्पन्न होने चाहिए। दीक्षा लेने वाला शिष्य गुणी होना चाहिए। क्योंकि गुण ही सर्वत्र पूज्य होता है। वह दुर्व्यसनी नहीं होना चाहिए, श्रेष्ठ कुल का होना चाहिए। उम्र में 8 वर्ष से कम का भी न होना चाहिए, जवान परन्तु उद्वेग से रहित होना चाहिए, अति वृद्ध भी नहीं होना चाहिए। जैसा अंतरंग में है वैसा ही बाह्य अर्थात् सरल स्वभावी होना चाहिए। गुरुदेव ने बताया कि सभी बीज उग नहीं सकते बहुत से बीज तो मनुष्यों व पशु-पक्षियों के पेट से मल द्वारा बाहर आने पर उगते हैं। उसी प्रकार आत्मविकास करना लोहे के चने चबाना है। जिस प्रकार अच्छे कॉलेज में एडमिशन के लिए परीक्षा होती है वैसे ही सर्वज्ञ बनने के लिए परीक्षा होती है। इस जीव ने अनादिकाल से सब कुछ प्राप्त कर लिया परन्तु स्वयं को प्राप्त नहीं किया। आत्मा को परमात्मा बनाना यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। न धर्मो धार्मिके बिना अर्थात् धार्मिक गुरुओं के बिना धर्म नहीं रह सकता। गुरुदेव कहते हैं हमें हमेशा विद्यार्थी बने रहना चाहिए जिससे हममें अहंकार नहीं होगा, हम बहुत ज्ञानी व बड़े हैं ऐसा सोचना हमारी भूल है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी जी ने नन्दौड़ में धर्मसभा को संबोधित करते हुए बताया कि नग्नता नवजात शिशु की तरह पहले अंतरंग में विकार, राग-द्वेष, कषाय व इन्द्रियों के जीतने के बाद बाह्य में नग्नता बालकवत् दीक्षा ली जाती है। नग्नता, पिच्छी, कमण्डलु साधु के प्रतीक चिह्न है। जो शिक्षा ग्रहण करता है वह शिष्य है। आजकल दीक्षा लेने के बाद शिष्य अपने आप को पूर्ण ज्ञानी समझता है गुरुदेव बताते हैं कि दीक्षा के बाद शिष्य को हमेशा विद्यार्थी बनकर ध्यान-अध्ययन करना चाहिए जब तक हम केवलज्ञानी भगवान् न बने तब तक हमारा ज्ञान अधूरा है। साधु का ध्यान व अध्ययन कर्तव्य होता है। दीक्षार्थी भावना करता है मैं दूसरों का नहीं हूँ,

दूसरे मेरे नहीं है ऐसा निश्चय करके जितेन्द्रिय यथाजात (नग्न) रूप को धारण करता हूँ। हम मुख्य आध्यात्मिक प्राणी हैं। हम स्वयं को जब तक अलग पृथक् नहीं मानते तब तक आध्यात्मिक यात्रा प्रारंभ नहीं होती है। बाहर से बालकवत् व अंतरंग से भावशुद्धि-किंचित् द्रव्य भी मेरा नहीं है। जो स्वयं को जान लेता है वह पर का ज्ञान भी कर लेगा। इन्द्रिय व नो इन्द्रिय को जय करने पर जितेन्द्रिय बनते हैं। तीर्थकरों के पास, चक्रवर्ती के पास इतना वैभव था परन्तु उसे तृणवत् समझकर जब सब कुछ त्याग करते हैं तब उन्हें सब कुछ आत्मोपलब्धि होती है। अश्लीलता का प्रदर्शन कपड़ों से होता है। गुरुदेव अपने आप को पाप को गलाने वाले 'पगले' बताते हैं।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया भगवान् की पूजा व भक्ति उनके गुणों का अनुसरण करने के लिए की जाती है। "वंदे तद्गुण लब्धये" हम आपकी वंदना आपके गुणों को प्राप्त करने के लिए करते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान बहुत व्यापक है। दीक्षा के बाद शिक्षा प्रारंभ होती है। दीक्षा के बाद दीक्षार्थी सांसारिक कार्यों से निवृत्त हो जाता है अतः उसमें योग्यता, श्रेष्ठतापूर्ण, समता भाव में रहने के कारण बढ़ जाती है। जो शिक्षा व दीक्षा देते हैं वह परम गुरु कहलाते हैं। गुरुदेव ने बताया कि आत्मा का चैतन्य स्वभाव ही अहिंसा है। पर द्रव्य में ममत्व बुद्धि को मूर्च्छा कहते हैं।

प्रकृति का सार आत्म संगति में निहित है। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य परम ज्ञान की प्राप्ति है। कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा कि पाप कार्य में निमंत्रण कौन देता है जैसे चोरी, भ्रष्टाचार, बलात्कार इत्यादि तो फिर पुण्य कार्य के लिए निमंत्रण की क्या आवश्यकता है, जो कायर होते हैं वह भेड़चाल चलते हैं। गुरुदेव ने नचिकेता की कहानी बताई और बताया कि माताओं को 100 पुत्र के जन्म से अच्छा एक पुत्र तीर्थकर की तरह, पाण्डवों की तरह श्रेष्ठ व पूरे विश्व को मार्गदर्शन करने वाला हो। गुरुदेव कहते हैं Who are you? तुमने स्वयं की कभी खोज नहीं की हम भगवान् न बन सके तो एक अच्छे नागरिक, नैतिक मानव बनकर भारत को पहले की तरह श्रेष्ठ, महान् व विश्वगुरु बनाये। गुरुदेव सामान्य नागरिक को दिव्य व महान् मानते हैं क्योंकि उनके मन में पाप-दोष व बुराइयाँ कम हैं। धन के बल पर शिक्षा व धर्म में विकृतियाँ आ गई हैं। गुरुदेव को पीड़ा है कि हमारा भारत आचरणविहीन होता जा रहा है, शिक्षा के मद व धन रूपी नींद की गोलियाँ खाकर भारत कुंभकर्ण की नींद सो रहा है। गुरुदेव बताते हैं मैं भारतवासियों को जगाने आया हूँ जो सब स्वयं के गुण

भूलकर दूसरों के दोषों को अपनाने में लगे हैं। हम आचरणविहीन होकर राक्षस बनने जा रहे हैं। गुरुदेव ने आह्वान किया कि तुम सहयोग दोगे तो मैं रावण रूपी सभी बुराइयों को मिटा दूँगा। गुरुदेव के साहित्य पर पीएच.डी. हो रही है विदेशों में उनके साहित्य को लोग रुचि से पढ़ रहे हैं। गुरुदेव के पास विदेश से वैज्ञानिक, प्रोफेसर पढ़ने को आते हैं।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि साधु का निश्चय मूलगुण 'समता' भाव है। जीवनभर भूखा रहना सरल है परन्तु समता में रहना कठिन है। समता का अर्थ है आत्मा में स्थिर रहना। समता में पूर्ण स्थिर रहने के लिए क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, अपरिग्रह, चार कषायों का त्याग आदि धर्म की शाखाएँ-प्रशाखाओं की तरह व बाड़ की तरह जो हमें धर्म से विचलित होने से रक्षा करती हैं। साधु के 28 मूलगुण, पंच समिति, 22 परीषह, 34 उत्तरगुण, 12 प्रकार का तप वह सब समता की रक्षा व दृढ़ पालन के लिए है। समता का भाव जब आत्मा में आता है तो आत्मा स्थिर व केन्द्रित होकर आत्मविकास करता है। यह 6 गुणस्थान से प्रारंभ होकर 13-14 गुणस्थान अर्थात् अंतिम सिद्ध अवस्था तक पूर्ण होता है। समता में रहना सीढ़ी चढ़ने की तरह है जब व्यक्ति प्रथम सीढ़ी से गिर जाता है तो नीचे आ जाता है उसी प्रकार समता में नहीं रह पाने से व्यक्ति धर्म से च्युत हो जाता है। नग्नता, केशलोच, उपसर्ग सहन, अंतराय आदि समता में रहने के बाह्य कारण हैं। मैं (आत्म स्वभाव) में रहना ही धर्म है। गुरुदेव ने बताया कि शिष्य में सजल श्रद्धा व प्रखर प्रज्ञा आवश्यक है।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया जो दीक्षा देते हैं वह गुरु हैं, परन्तु शिक्षा देने वाले गुरु को निर्यापक, शिक्षा गुण व श्रुतगुण कहते हैं। निर्यापक केवल समाधि कराने वाले आचार्य को नहीं बल्कि जो शिष्य का निर्वहन करते हैं, पालन करते हैं, दोष के अनुसार शिष्य को प्रायश्चित्त देकर शिष्य को सुधारते हैं, पढ़ाते हैं, आत्मबोध कराते हैं, संवेग (संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य) और वैराग्य से शिष्य को संबल (रक्षा) देते हैं। अतः शिक्षा गुरु ही परम गुरु है।

ज्ञान का विकास होने पर इच्छाएँ सीमित हो जाती हैं। दृष्टिकोण गलत होने पर उत्तेजना व क्रोध आता है दृष्टिकोण सही होने पर, समतापूर्ण, क्रोध नहीं, पित्त का प्रकोप नहीं होता, सम्यक् ज्ञान से वात रोग, दर्शन से पित्त रोग व चारित्र से कफ रोग शांत होता है।



स्वचित्त को निर्मल करना प्रायश्चित्त है यह कई प्रकार का होता है। इसे आचार्य ही दे सकते हैं। हमारे द्वारा जो दोष किये गये हैं या अनजाने में हो गये हैं उनको गुरु के सामने बालकवत् बताकर हमें गुरु से प्रायश्चित्त लेना चाहिए। गुरुदेव ने बताया कि विदेशों में मनोवैज्ञानिक प्रायश्चित्त बहुत अच्छा हैं।

आदिनाथ व अजितनाथ से पार्श्वनाथ तक के शिष्य सरल व प्राज्ञ थे। वो केवल मूलगुण सामायिक चारित्र का पालन करते थे। उसमें 20 मूलगुण सम्मिलित हो जाते हैं। महापुरुषों को सामान्य लोग समझ नहीं पाते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान अद्भुत होता है इसी तरह हमारे गुरुदेव भी बिरले ही हैं उन्हें भी सामान्यजन समझ नहीं पाते।

हमें शब्दज्ञान बहुत कम हैं हम अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। जैसे फिल्म में काम करने वालों को हम नायक या हीरो बोलते हैं, जबकि वास्तविक शब्द 'नट' यानी जो नाटक करता है। फिल्म एक नाटक ही तो है। हीरो किसको कहते हैं? गुरुदेव बताते हैं जो वीर है, जो कर्म पर विजय प्राप्त करे आत्मविजयी को रियल हीरो कहते हैं। नायक का अर्थ तीर्थकर या समाज-सुधारक हैं।

साधु हमेशा प्रतिक्षण समता में रहते हैं। साधु निवास नहीं अधिवास करते हैं। निवास का अर्थ है गुरु रहित वास अतः साधु निर्लोभी, निरहंकारी, निःकषायी, निर्बंध होकर हमेशा 8-10 किलोमीटर विहार करते रहते हैं। चारित्र विशुद्धि के लिए, ज्ञान वृद्धि के लिए, धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सतत चातुर्मास को छोड़कर विहार करते रहते हैं। विहार में मिलने वाले स्थान व श्रावकों से हमेशा अनासक्त रहते हैं। चातुर्मास में सूक्ष्म जीवों की रक्षा व धर्म प्रभावना के लिए रुकते हैं।

जो आत्मा के लिए सतत श्रम करता है वह श्रमण यानि साधु है। मैं यानि स्वयं, आत्मा कहाँ है? उसके उत्तर में कनकनन्दी गुरुदेव बताते हैं जो संवेदनशीलता है, चेतनात्मकता है, भावात्मकता आत्मा है। चेतना के द्वारा स्वयं की अनुभूति मैं है। मैं अर्थात् शुद्धात्मा में साधु हमेशा लीन रहते हैं। गुरुदेव उदाहरण द्वारा समझाते हैं कि किसी व्यक्ति का पुत्र खो गया हो तो वह उसके बारे में सबको पूछता है, टी.वी. में, अखबार में देता है और जब तक वह न मिले उसे याद रखता है उसी प्रकार हमें मैं यानि हमारी आत्मा को प्राप्त करना है अतः जब तक वह प्राप्त नहीं होता तब तक जो मिले उन सबसे ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए। हम बच्चों को बाहर पढ़ने भेजते हैं तो कैसे सब प्रकार की जानकारी लेते हैं परन्तु अपनी आत्मा को जानने के लिए कोई

कोशिश व परिश्रम नहीं करते हैं। संपूर्ण धर्म आत्मा पर केन्द्रित है जिस प्रकार संपूर्ण विज्ञान एटम पर केन्द्रित है। अज्ञान, मोह, मिथ्या के कारण हमारे भाव विपरीत होते हैं मैं (स्वयं) को जानने की कोशिश नहीं करते हैं। मैं का कितना व्यापक अर्थ है। गुरुदेव जब बताते हैं मैंने यह लिखा है, मैं यह बता चुका हूँ, हमें लगता है गुरुदेव, अपनी बढ़ाई कर रहे हैं परन्तु गुरुदेव सत्य महाव्रत का पालन कर रहे हैं। मैंने यह कार्य किया उसको न कहने पर भी दोष लगेगा। मैं यानि यह जीव पाप करता है तो उसे ही भोगना है। पुण्य करेगा, धर्म करेगा तो भी उसे ही फल मिलने वाला है। हम भगवान् भूखे है इसलिए पूजा-पाठ-द्रव्य नहीं चढ़ाते बल्कि हमारे भाव निर्मल हो, आत्मा पवित्र हो और जिस प्रकार उन्होंने (भगवान्) कर्मों पर विजय प्राप्त की वैसे हम भी उनकी तरह इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे व उनके गुणों को प्राप्त करें। भगवान् की तरह हमारी आत्मा भी यदि विभावों, दुर्गुणों को छोड़ दे तो एक दिन शुद्ध, सिद्ध, निरंजन, निःकषायी, निस्पृही, सच्चिदानंद, परमानंद भगवान् आत्मा बनेगा।

अवश्यंभावी मरण में राग, द्वेष, मद, मोहादि के बिना की गई सल्लेखना से पुरुष का आत्मघात नहीं है क्योंकि सल्लेखना में कषाय को क्षीण किया जाता है और जहाँ कषाय का आवेश नहीं है वहाँ आत्महत्या नहीं होती है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि प्रमत्त से प्राण का व्यपरोपण करना हिंसा है। जो पुरुष शुद्ध अन्तःकरण से सल्लेखना करता है उसका प्रमाद का योग नहीं होता है। सल्लेखना युक्त पुरुष राग, द्वेष, काम, मोह, क्रोधादि में प्रवर्तन नहीं करता है। इसलिए उसका आत्मवध नहीं है। रागादि सहित का अशुभ भाव में प्रवर्तन करने वालों का ही आत्मघात होता है अन्य के नहीं।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा जैन धर्म जैसे वस्तु स्वरूप अनेकान्तात्मक, उदारवादी, सहिष्णु, अहिंसा प्रधान, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, वैश्विक, वैज्ञानिक धर्म के ऊपर ऐसा अनैतिक-अवैधानिक, पक्षपातपूर्ण, अज्ञान से युक्त, आक्षेपात्मक प्रहार वस्तुतः उपर्युक्त गुणों के ऊपर ही प्रहार है। गुरुदेव ने बताया कि आत्महत्या और संथारा (आत्मशुद्धि) में बड़ा अंतर है। संक्लेश, कषाय के आवेश में आत्महत्या की जाती है। जबकि समता, संवेग की साधना से आत्म समाधि या शुद्धि की जाती है। इस विषय में भारतीय आर्ष ग्रंथों में जान देने और देह विसर्जन में

## आध्यात्मिक अंतर बताया गया है।

आत्म स्वरूप के अनुरूप प्रवृत्ति नहीं करना वस्तुतः आत्महत्या है। हमारी आयु प्रति समय क्षीणतर होती जा रही है। प्रति समय हमारी सूक्ष्म मृत्यु हो रही है। किसी धर्म, समाज विशेष की यथार्थ मान्यताओं का तलस्पर्शी गहन अध्ययन किये बिना किसी की आलोचना करना अनुचित है। दूसरों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना अनुचित है। दिगम्बर जैन परंपरा में भगवती आराधना (मरणकण्डीका) मूलाचार जैसे ग्रंथों में समाधि मरण संबंधी विशद व्याख्यान किया गया है। मात्र अन्न-जल त्याग करके कोप-रोष आविष्ट होकर अकाल में देह-त्यागना निश्चित रूप से आत्महत्या है। लेकिन अंग विज्ञान, शकुन विज्ञान एवं आयुर्विज्ञान के निर्देश में किसी अनुभवविद् कुशल मार्गदर्शक आचार्य के सान्निध्य में देह के प्रति उपेक्षा (उदासीन) भाव रखते हुए आत्म अनुभूति में ध्यानस्थ समययोग युक्त होना ही समाधि है। समाधि में मृत्यु की भी इच्छा नहीं होती है। जीवन और मरण प्रति समबुद्धि रहती है।

दुर्भाग्य है कि धर्म को कानून की कसौटी पर खरा साबित किया जा रहा है। जबकि कानून किसी ईश्वरीय शक्ति से रचित नहीं है। साधारण मनुष्य धर्म की समालोचना नहीं कर सकता। धार्मिक मूल्यों परंपराओं को सच्चाई व अच्छाई की कसौटी पर ही परख लेना चाहिए।

भारत में गरीब, बेरोजगार, किसान वर्ग बड़ी संख्या में आत्महत्या कर रहे हैं। पशु हत्या, गौवंश हत्या को सरकार, कानून-जनता बढ़ावा दे रही हैं। समय की माँग है, राष्ट्र की धरोहर की रक्षा करने के लिए अपनी बुद्धि, शक्ति व समय का प्रयोग करे। आध्यात्मिक जीवन, कानून से ऊपर है। योग वशिष्ट में समाधि को साधना की अंतिम स्थिति बताया है आत्मा को कर्म से मुक्त करने के लिए कठोर अनुष्ठान की अनिवार्यता है। समाधि में वैराग्य, समता, सरलता, शांति एवं मनोबल की प्रबलता रहती है। जबकि आत्महत्या में संक्लेश, हताशा, निराशा एवं कायरता के साथ-साथ तनाव का आवेश रहता है। अतः समाधि आत्महत्या नहीं अपितु आत्मशुद्धि की एक व्यक्तिक प्रक्रिया है। व्यसन और विलासिता आत्महत्या की धीमी प्रक्रिया है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा समाधि एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जबकि आत्महत्या एक भौतिक शारीरिक क्रिया है। समाधि संपूर्ण रूप से स्वैच्छिक है तो आत्महत्या के पीछे कोई न कोई विवशता या बाध्यता

होती है। समाधि का प्रमुख लक्ष्य आत्म कल्याण, मोक्ष प्राप्ति होता है तो आत्महत्या का मुख्य कारण तत्कालीन कष्टों से पीछा छुड़ाना दुःखों से पलायन होना है। समाधि में अवश्यंभावी मरण के समय में भोजन-पानी का त्याग शक्ति के अनुसार स्वैच्छिक होता है तो आत्महत्या किसी भी विष, अस्त्र, अग्नि, पानी, श्वासरोध, फाँसी, यान-वाहन, उच्च स्थान से गिरना आदि से की जा सकती है। समाधि में मृत्यु एकदम नहीं होती है। इसकी प्रक्रिया 12 वर्ष तक शनैः-शनैः होती है। यम समाधि को त्यागकर सामान्य जीवन भी जीया जाता है। जब मरण के कारण रूप रोग, विपत्ति, हिंस्रपशु का आक्रमण, विषाक्त जीवों के द्वारा दंश, दूसरों के द्वारा विषपान आदि कारक दूर हो जाते हैं। परन्तु आत्महत्या/सतीप्रथा एकदम होता है। समाधि का भाव स्वयं के निर्मल परिणामों से उत्पन्न होता है जबकि आत्महत्या का भाव एक आवेग, आवेश, विवशता, उत्तेजना, संक्लेश, पीड़ा आदि का परिणाम होता है। आत्महत्या एक प्रक्रिया है जबकि समाधि मृत्यु महोत्सव, वीर-मरण है जिससे समाज में ज्ञान, वैराग्य, त्याग, आध्यात्मिक, निस्पृहता, अनासक्त आध्यात्मिक शहीद का पाठ पढ़ाने वाला होने से लोक हितकारी है।

**कषाय**-कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषाएँ हृदय को जलाती हैं। कषाय समीचीन ज्ञान रूपी दृष्टि को मलीन कर देती है। सम्यग्दर्शन रूपी वन को उजाड़ देती है चारित्र रूपी सरोवर को सुखा देती है। तपरूपी पत्तों को जला देती है। अच्छे मन को मलीन कर देती है। हृदय को कठोर बनाती है। प्राणियों को घात करती है। वाणी को असत्य की ओर ले जाती है। महान् गुणों का भी निरादर करती है। यशरूपी धन को नष्ट करती है। दूसरों को दोष लगाती है। महापुरुषों के गुणों को ढाकती है, मित्रता की जड़ खोदती है। किये हुए उपकार को भुलाती है। महान् नरक के गड्ढे में गिराती है। दुःखों के भँवर में फँसाती है। इस प्रकार कषाय अनर्थ कराती हैं। ऐसी भावना से कषाय को शांत करना चाहिए। कषायों को कृश करना ही संश्लेषणा होती है।

रत्नत्रय के विनाश को अपाय और रत्नत्रय के लाभ को उपाय कहते हैं।

जीवन-मरण में, लाभ-अलाभ में, निन्दा प्रशंसा में जिसका चित्त समान रहता है वही श्रमण या समण होता है। जो गुरु-शिष्य के दोषों का निवारण नहीं करता वह जिह्वा से मधुर बोलने पर भी भद्र नहीं है और जो गुरु दोषों का निवारण करता हुआ

पैर से मारता भी है वह भद्र हैं।

अपरिस्त्रावी गुण से युक्त आचार्य अन्य मुनियों के कहे गये दोष प्रकट नहीं करते।

जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का दान करने में तत्पर रहते हैं, सुख और दुःख में समभाव रखते हैं तथा परीषहों से विचलित नहीं होते उन महान् गुरुओं के वियोग का दुःख सहना अति कठिन है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा वेदों में बताया गया है कि श्रवण (सुनने) मात्र से उसका मनन करना सौगुणा अच्छा है और मनन से भी लाखगुणा श्रेयस्कर निदिध्यासन (आत्म भावना को अपने चित्त में स्थिर करना) हैं तथा निदिध्यासन से भी अनंत गुणा निर्विकल्प-समाधि है (जिससे चित्त फिर आत्म स्वरूप से कभी चलायमान ही नहीं होता) निर्विकल्प समाधि के द्वारा ही ब्रह्म तत्त्व का स्पष्ट ज्ञान होता है अन्य अवस्था में नहीं क्योंकि अन्य अवस्थाओं में चित्त वृत्ति के चंचल रहने से बुरी भावनाओं व कषायों आदि अन्यान्य विकृतियों का भी मैल रहता है। अतः समाधि में साधु संयतेन्द्रिय होकर शांत मन से निरंतर आत्मा (ब्रह्म) में चित्त स्थिर करता है। सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ अपना ऐक्य देखते हुए अनादि अविद्या से उत्पन्न अज्ञानांधकार को ध्वंस करते हैं।

वाणी को रोकना, द्रव्य का संग्रह न करना, लौकिक पदार्थों की आशा छोड़ना, कामनाओं का त्याग करना और नित्य एकांत में रहना ये योग का पहला द्वार हैं। एकांत में रहना इन्द्रिय-दमन का कारण है, इन्द्रिय दमन चित्त के निरोध का कारण है और चित्त निरोध से वासना का नाश होता है तथा वासना के नष्ट हो जाने से योगी को ब्रह्मानंद रस का अविचल अनुभव होता है। इसलिए मुनि को सदा प्रयत्नपूर्वक चित्त का निरोध ही करना चाहिए। समाधि के समय योगी का चित्त यदि देह, प्राण, इन्द्रिय मन और बुद्धि इन उपाधियों में से जिस-जिसके साथ योगी की चित्त वृत्ति का संयोग होता है उसी-उसी भाव की उसको प्राप्ति होती है। जब उस मुनि का चित्त, इन सब उपाधियों से निवृत्त हो जाता है तो उसको पूर्ण उपरति का आनंद स्पष्टतया प्रतीत होने लगता है जिससे उसके चित्त में सच्चिदानंद रसानुभव की बाढ़ आने लगती है; यही सच्ची समाधि, संथारा, संल्लेखना है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव द्वारा लिखी गई “सर्वज्ञ गुरु के स्कूल

का मैं छोटा-सा विद्यार्थी” कविता सुविज्ञसागर जी द्वारा सुनी इसके बाद गुरुदेव ने बताया कि आत्म तत्त्व का ज्ञान सभी को नहीं हो पाता क्योंकि मन चंचल है इसमें राग-द्वेष-कषायों आदि विकारों का कचरा पड़ा हुआ है जिस प्रकार पानी साफ होने पर ही हमारा प्रतिबिंब दिखाई देता है उसी प्रकार स्वयं के दोषों को जाने बिना दूर किये बिना आत्म तत्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। शारीरिक रूप से उपस्थित होकर पूजा-पाठ, दान, स्वाध्याय, अभिषेक, जाप, उपवास करने से भावात्मक रूप से जुड़ने पर ही अधिक पुण्य मिलता है। मौन रहना, केवल चुप रहना पुण्य नहीं है उसके माध्यम से आत्मा तक पहुँचना अधिक पुण्य है। उसी प्रकार उपवास में केवल भोजन नहीं करना उपवास नहीं है, आत्मा के पास रहना उपवास है। (स्व+अध्ययन आत्मा का अध्ययन) स्व-आत्मा में कल्पना रहित होकर लीन रहना सच्ची समाधि (संथारा) है। मरते समय हमारा ध्यान शरीर में होने से शरीर के कीड़े, धन में धन होने पर धन के रक्षक साँप जैसी मति होगी वैसे ही गति होती है। लोग कहते हैं मरण सुधर गया उसका अगला भव सुधर गया। अतः अंत में आत्म चिंतन, आत्मध्यान आवश्यक है यही समाधि का उद्देश्य है।

**हिंसा**-आत्मा का स्व-स्वरूप अहिंसा है। आत्मा में अहं बुद्धि करना अहिंसा है। आत्मा का स्वरूप समता, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख है वही अहिंसा है। साधु हिंसा से बचने के लिए समिति का पालन करते हैं परन्तु बिल्ली भी शिकार के समय चारों ओर देखकर धीमे से चलती है परन्तु वह हिंसक है क्योंकि उसके भाव हिंसा के हैं। स्वस्थ भावना अर्थात् अपनी आत्मा में स्थिर होना अहिंसा है। जैन धर्म में हिंसा का अति सूक्ष्म वर्णन है। भाव को पवित्र करने में प्रयत्न नहीं करना हिंसा है। तनाव हिंसा का समुच्चय स्वरूप है। बाहर में हिंसा हो या न हो परन्तु आंतरिक तनाव में रहना ही हिंसा है। स्वयं को सुंदर दिखाने का भाव भी हिंसा है। अज्ञान महापाप है। जितना-जितना हमारा भाव पवित्र, शुद्ध, निर्मल होता जाता है उतने हम धार्मिक होते हैं। खोटा, छोटा, अपवित्र, संक्लेश युक्त, तनाव वाले सब अधार्मिक हैं। हम क्रिया से सूक्ष्म जीव को भी न मारे परन्तु भावना अपवित्र होने पर हिंसा है। शाकाहारी, पूजा-पाठ, अभिषेक, आहारदान, स्वाध्याय आदि धर्म तक पहुँचने के लिए माध्यम (सीढ़ी) हैं। Way of the Religion.

**हिंसा**-निर्मल भाव समता से युक्त होना अहिंसा है। निर्मल भावों से आत्मानुभूति

नहीं करना हिंसा है। स्वयं को पवित्र, उदार, शुद्ध बनाना यही अहिंसक का उद्देश्य है यही धर्म है। बिना तपाये सोने को शुद्ध नहीं कर सकते वैसे ही बिना गुरु के उपदेश के मोक्ष नहीं हो सकता। गुरु बिना आध्यात्मिक यात्रा चालू नहीं होती। श्रोताओं के पुण्य को सर्वज्ञ बढ़ाते हैं। गुरु स्वयं के उद्धार के साथ श्रोताओं को संसार समुद्र से पार होने का पथ-प्रदर्शन करते हैं। जैन धर्म में हिंसा का अति सूक्ष्म वर्णन है। बिना आसक्ति, निर्मल भावों से रोज आहार के बाद भी श्रेष्ठ अहिंसक हो सकता है। जीवन भर भूखा रहने वाला भी हिंसक हो सकता है, होता है। निगोदिया जीव किसी को बाधा नहीं पहुँचाते न किसी के द्वारा बाधित होते हैं तो भी महाहिंसक है।

जो स्वयं को जानता है वह विश्व को जानता है। आत्म स्वरूप को नहीं जानने वाला मूढ़ है। एक अक्षर नहीं बोलने वाला भी महान् ज्ञानी हो सकता है और बहुत बोलने वाला भी मूढ़ (अज्ञानी) हो सकता है यह वाक्-चातुर्य है। पर-वस्तु के प्रति आसक्ति ही महान् हिंसा है। आत्म स्वरूप के ज्ञान बिना तथा श्रद्धा बिना कितना भी त्याग करो मोक्ष नहीं ले जायेगा। हिंसा का परिहार बहुत कठिन है। अतः साधुओं की वृत्ति (क्रिया) सांसारियों से भिन्न होती है। हम सोचते हैं अन्य वस्तु के कारण बंध (कर्म) हो रहा है यह गलत है। हमारी आत्मा के राग, द्वेष, मोह आदि अध्यवसाय से अर्थात् स्व-कारण से स्वयं आत्मा में बंध हो रहा है। इसके विपरीत हमारे भाव पवित्र, निर्मल, सरल, निर्मोही, क्षमावान्, सत्य, निराभिमानी, निर्लोभी, दयालु, राग-द्वेष से रहित वीतरागी होंगे उतना-उतना कर्मबंध कम होगा।

अधिकांश पाप हम 'लोग क्या कहेंगे' ऐसा सोच कर करते हैं। चतुर्थ काल का नाम दुःखमा-सुखमा है अर्थात् उस काल में भी दुःख सहित सुख था। उस काल में भी सभी अच्छे नहीं थे कुछ बिरले ही लोग आत्म कल्याण करते हैं। वर्तमान में विदेशियों का आध्यात्मिक विकास हो रहा है और भारतीयों का पतन।

**निन्दा**-वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि निन्दा महापाप है। इसमें दूसरों का पतन हो न हो परन्तु स्वयं का पतन होता है। उसकी आत्मा का घात होता है। अपनी आत्मा में दूसरों के प्रति घृणा, द्वेष, संक्लेश होता है तब दूसरों की निन्दा होती है। निन्दा करनी हो तो स्वयं की बुरे भावों, गलत कार्यों की करनी चाहिए। निन्दा को वर्तमान में कोई पाप समझता नहीं है। यह निन्दक सबसे बड़ा हिंसक है। निन्दा हमें दुर्गति में ले जाती है। संसारी जीवों का अधिकांश समय निन्दा में ही जाता

है। बातचीत करने का जरिया ही निन्दा रहता है। निन्दा की जड़ें नरक तक ले जाती हैं। एक गाँव के 60,000 लोगों ने गुरु/निर्ग्रंथ मुनि की निन्दा की, अनुमोदना से पूरा गाँव जल गया नाना प्रकार की योनियों में भटकने के बाद जब सगर चक्रवर्ती के पुत्र हुए तो भी 60,000 पुत्रों का साथ-साथ मरण हुआ। गाँव के एक कुम्हार ने गुरु निन्दा की अनुमोदना नहीं की तो (वह भागीरथी बना) पूरे गाँव में आग लगने पर भी बच गया उसी प्रकार श्रीपाल के पूर्वभव में साधु पर हँसने और 700 लोगों की अनुमोदना करने पर सब कोढ़ी हुए।

अभिमान को त्याग के स्वाभिमान से ही सोऽहं (स्वयं, आत्मा) की प्राप्ति होती है। आत्मविशुद्धि ही प्रमाण है। स्वयं क्या सोचते हैं धर्म का यही थर्मामीटर है। सत्य, शांति, आत्मा का विकास चाहने वाले स्वयं के अनुसार चलते हैं। दूसरों के अनुसार चलने से कोई महान् नहीं बनता। मीरा, बुद्ध, महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ आदि के साथ जितना दुर्व्यवहार हुआ उतना दुष्ट चोर, अत्याचारी, लुटेरों, अनाचारी आदि पर नहीं हुआ। आत्म कल्याण के लिए दूसरों के अनुसार चलने की आवश्यकता नहीं। दूसरों के अनुसार चलते से स्वयं का पतन होता है। महान् कार्य में दूसरों की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। सत्यशोधक, वैज्ञानिक, तीर्थंकर सब स्वयं के अनुसार चलते हैं। आत्मा की विशुद्ध समता से है, समता से ही सिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य अति निकृष्ट प्राणी है जितना आविष्कार हुआ है सब पशुओं के आधार से है। मनुष्य का जीवन पशुओं व वनस्पति पर निर्भर है। मधुमक्खियों के नहीं होने पर मनुष्य केवल 20 वर्ष व वनस्पति के नष्ट होने पर घंटे भर में मनुष्य का विनाश है।

“दान से त्याग श्रेष्ठ”-वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने त्याग को दान से श्रेष्ठ बताया। दान में अहं भाव निहित होता है जबकि त्याग में भावों की विशुद्धि होती है। दान में पर-वस्तु अर्थात् द्रव्य होता है। वह अनीति, दगाबाजी, चोरी, भ्रष्टाचार, पंच पापों से, कषायों से, ठगबाजी, मिलावट, शोषण, धोखाधड़ी से कमाया हुआ होता है परन्तु त्याग में विभावों का बुरी आदतों का कषायों का दमन होता है वह स्व-वस्तु है इसमें पर-वस्तु का आवलंबन नहीं है। दान से मोक्ष नहीं जबकि त्याग से मोक्ष होता है।

**परिग्रह सबसे बड़ा पाप**-परिग्रह महापाप है। परिग्रहधारी हिंसक है। पर-द्रव्य में ममत्व भाव या मूर्च्छा परिग्रह है। परिग्रह से अवश्य बंध होता है। केवल दिल



दुःखाना, मारना या मारने के भाव ही हिंसा नहीं, पर-द्रव्य के प्रति आसक्ति भी हिंसा है। परिग्रह के भाव में राग-द्वेष, मोह, मायाचारी, मान आदि विभाव रहते हैं। व्यापार, नौकरी आदि करने वाले समझते हैं कि हम हिंसा पाप परिग्रह नहीं कर रहे हैं परन्तु इसमें सब पाप गर्भित है वह सब हिंसक है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि भावों का दूषित होना महापाप है। जितने-जितने अंश में भाव विशुद्धि होती है उतने-उतने अहिंसक होते जाते हैं। उबलते हुए पानी से भाप निकलती है ऐसे ही हमारे शरीर से अनंत जीव मरते हुए निकलते हैं। निगोदिया जीव बिना परिग्रह से भी अशुद्ध भावों व मिथ्यात्व के कारण कर्मबंध करते रहते हैं। निस्पृहता समता से ही सुख मिलता है। जीव हिंसा से बंध हो या न हो परन्तु परिग्रह से अवश्य कर्मबंध व हिंसा होती है। अतः साधु सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करते हैं। स्वयं की आत्मा (मैं) ही अपरिग्रही है।

“अपेक्षा-उपेक्षा से रहित होना”-अपेक्षा-उपेक्षा से रहित होना यही निरपेक्षता है। भाव विशुद्धि होने पर ही अंतरंग विशुद्धि होगी। वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने नंदौड़ में बताया कि जितना-जितना हमारे स्वभाव अर्थात् भावों में निर्मलता, सहजता, सरलता, निर्ममत्वता, निर्मोहिता बढ़ेगी उतनी-उतनी हमें सुख व शांति का अनुभव होगा। पात्र कितना भी सुंदर सोने-चाँदी का हो परन्तु अंदर पानी न होने से हमारी प्यास नहीं बुझ सकती उसी प्रकार धर्म को धारण यानि आचरण में लाये बिना व्रत, उपवास, पूजा, जप, तप सब व्यर्थ जायेंगे। अंतरंग विशुद्धि के बिना बाह्य क्रिया-काण्ड कुछ फल नहीं देंगे।

“धर्म प्रदर्शन नहीं आत्मदर्शन”-वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि मिथ्या ढोंग, पाखण्ड, राग, द्वेष, मनोरंजन, आकांक्षा ये विभाव स्वयं के अवचेतन मन में होने के कारण जीव स्वयं के दोष को नहीं जान पाते हैं। यदि हमारी पुस्तक पर प्लास्टिक का कवर है उस पर हम स्याही या तेल डालेंगे तो वह पुस्तक को गीला नहीं करेगा। उसी प्रकार हमारी आत्मा पर अनादिकालीन राग-द्वेष, मोह, मायाचारी, ढोंग, दिखावा, आकांक्षा के संस्कार पड़े हुए हैं अतः धर्म हमारी आत्मा तक नहीं पहुँच पा रहा है। अतः हम आत्मदर्शन नहीं प्रदर्शन करते हैं। भोगानंद चाहते हैं। भगवान् से पूजा-पाठ, जप, तप के बदले हम सांसारिक वस्तुएँ बेटा, बेटा, धन-दौलत आदि चाहते हैं। तीर्थकर भी बनना यदि हम प्रसिद्धि के लिए चाहते हैं तो यह

तप भी व्यर्थ है। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए ही तप किया जाता है। पानी को ऊपर चढ़ाना है तो यंत्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमें परमानंद, निजानंद, आत्मानंद, चिदानंद, निर्भयानंद, निरपेक्षानंद चाहते हैं तो सभी सांसारिक विभावों को अपेक्षा-उपेक्षा को छोड़ना होगा।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी ने बताया कि धर्म संसार चलाने के लिए नहीं बल्कि संसार को नष्ट करने के लिए है। पापानुबंधी पुण्य से जो संपत्ति मिलती है उसे भी पाप कार्यों में लगायेंगे तो उसका फल बुरा भोगना पड़ेगा। धर्म में श्रद्धा भी रखता है, उसमें लीन हो जाता है, रच-पच जाता है परन्तु उसके बदले सांसारिक भोगों की आकांक्षा हो तो सब व्यर्थ चला जायेगा। आत्म स्वभाव से यह जीव अनंत गुणा विपरीत गया है अतः स्व-स्वभाव को प्राप्त करने के लिए अनंत गुणा ध्यान-तप करना पड़ेगा। जो अंतर्मुखी होते हैं उन्हें बाह्य पदार्थ, ख्याति, प्रसिद्धि में कोई रुचि नहीं रहती है। सम्यग्दृष्टि होने पर आत्मा में रुचि बढ़ेगी। व्यक्ति की जिसमें रुचि होती है वह वही कार्य करता है स्वयं की दुःख वेदना को भूलकर उसमें लीन हो जाता है। जैसे वैश्यागामी को एड्स हो जाये, बूढ़ा हो जाये, गरीब हो जाये तो भी वह वैश्यागमन नहीं छोड़ेगा। बुरे कार्य में, लोभ में एक बार रुचि हो गई तो उसको दूर करने में अनंत भव लग जायेंगे। गुरुदेव कहते हैं सांसारिक कार्य में जितनी बुद्धि लगाते हो उतनी आत्म कल्याण में लगाओ, तन, मन स्वस्थ बनाओ। सबसे पहले रुचि को बदलना होगा इंजन जिधर जायेगा गाड़ी उधर ही जायेगी। अतः हमारे विचारों को मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में, आत्मलीनता में बदलने पर ही वास्तविक आनंद प्राप्त होगा। रुचि होगी तभी लीनता होगी। शुभ व अशुभ शक्ति का केन्द्र आत्मा है। आत्मिक विकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील (परस्त्री गमन), परिग्रह आदि को छोड़ना होगा।

“अहंकार ममकार से नहीं आत्म उपलब्धि”-वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया यह शरीर ही मेरी आत्मा है, मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ यह मानना अहंकार है। ये पुत्र मेरा है, यह बेटी मेरी है, यह मेरे पिता है, यह मेरी माता है, यह मेरा घर है आदि सब पर पदार्थों को मेरा मानना ममकार है। अहंकार ममकार से दूर आध्यात्मिक मैं (आत्मा) अहं मेरा अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख, शुद्ध मेरा स्वभाव हैं। स्व को छोड़कर सब पर द्रव्य

परिग्रह हैं। शुद्ध स्वरूप को छोड़कर अन्य मैं मानना अहंकार है व मेरा मानना ममकार है। जब तक शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं होती तब तक जीव असंयमी है। जहाँ असंयम है वह परिग्रह हैं। मन परद्रव्य है, मन से उत्पन्न होने वाले भाव परद्रव्य हैं। विषय लोलुपता और परिग्रह संचय दोनों आत्मानुभूति में बाधक है। चक्रवर्ती का इतना वैभव होता है परन्तु मरते समय अणु मात्र भी उसके साथ नहीं जाता केवल पुण्य और पाप ही साथ जाते हैं। मूर्ख पुरुष धन को छोड़कर (देकर) शोक करते हैं। पुरुषार्थी पुरुष धन को देकर अहंकार करते हैं। परन्तु तत्त्वज्ञानी धन देने पर शोक भी नहीं करता व अहंकार भी नहीं करता समता में रहता हैं।

महापुरुषों के विशेष गुणों को सभी समझ नहीं पाते। उनकी सरलता ही उनकी महानता हैं। ऐसे ही हमारे गुरुदेव कनकनन्दी को सभी नहीं समझ पाते क्योंकि वह शुद्ध हिन्दी बोलते हैं, हमें हिन्दी आती नहीं। हमारा ज्ञान भी अति स्थूल हैं जिस प्रकार तीर्थंकर की वाणी को गणधर पूर्ण रूप से नहीं समझ पाते। हमारे गुरुदेव गूढ़ शब्दों का मर्म रहस्यों को, गहन विषयों को इतनी सरलता से समझाते हैं कि कठिन विषय भी सरलता से समझ पाते हैं परन्तु हमारा ध्यान एकाग्रचित्त होना चाहिए। गुरु से ज्ञान प्राप्ति की पीपासा होनी चाहिए। गुरुदेव आत्मोपलब्धि के लिए ही एकांत, मौन अधिक चाहते हैं।

## समता गुरुदेव की

हमारे गुरुदेव हमेशा समता में रहते हैं कोई उनके सामने आकर भी “कालिया तेरा क्या होगा” ऐसे शब्दों का प्रयोग करे तो भी गुरुदेव तनिक भी विचलित नहीं होंगे बल्कि भावना करेंगे कि उनकी (बुद्धि) मति सन्मति हो। ऐसा जो बोल रहे है वह ऐसा बोलकर अपने भावों को क्यों कलुषित कर रहे हैं। साधु की जो भाषा समिति होती है उनका पालन कहाँ कर रहे है। साधु हमेशा हित, मित, प्रिय वचन बोलते हैं उनका तो प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य रहता है। पंथवाद के प्रति लोगों को क्यों भड़का रहे हैं। यदि विष्णु कुमार मुनि भी पंथवाद में पड़ते तो 700 मुनियों का उपसर्ग दूर कर सकते थे? अपने आप को गब्बर बोलना कितनी ओछी भाषा है इतने महान् साधु वेश को क्रूर प्राणी से तुलना करके अपनी कीमत अपने आप क्यों कम कर रहे हैं? हमारा जैन धर्म रंग का नहीं गुणों का पूजक है, मोक्ष पुरुषार्थ के लिए काला-गोरा नहीं

गुणस्थानों की आत्मविशुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। हमारे 20वें व 22वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत भगवान् व नेमीनाथ भगवान् का वर्ण तो काला था परन्तु उन्हें तो मोक्ष जाने के लिए काला रंग है ऐसा समझकर नहीं रोका गया तो फिर एक साधु की दूसरे साधु के प्रति इतनी कटुता क्यों? सामान्य व्यक्ति भी काले व्यक्ति को काला ऐसा नहीं बोलता बल्कि हमारी बागड़ी भाषा में तो सुंदर व गोरे बच्चे को प्यार से कालु, कालिया शब्द बोलते हैं। भरतसागर जी के बारे में अपशब्द बोलकर बाद में कहते हैं मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। साधु हमेशा सोच-विचार कर बोलते हैं, वे कभी समाज में कलह पैदा हो ऐसे शब्द प्रयोग नहीं करते।

**क्षायिक 9 लब्धियाँ**—(1) क्षायिक दर्शन, (2) क्षायिक ज्ञान, (3) क्षायिक चारित्र, (4) क्षायिक सम्यक्त्व, (5) क्षायिक दान, (6) क्षायिक लाभ, (7) क्षायिक भोग, (8) क्षायिक उपभोग, (9) क्षायिक वीर्य।

**कौन किसमें प्रसिद्ध**—जुआ-युधिष्ठिर राजा, माँस भक्षण-वक राजा, मद्यपान-यदुवंशी राजा के पुत्र, वैश्या सेवन-चारूदत्त सेठ, शिकार-ब्रह्मदत्त, चोरी-सत्यघोष, परस्त्री सेवन-रावण।

**मोक्ष 4 प्रकार का**—(1) 4 गुणस्थान में दर्शन मोक्ष, (2) 12 गुणस्थान में कषाय मोक्ष, (3) 13 गुणस्थान में भाव मोक्ष, (4) 14 गुणस्थान में द्रव्य मोक्ष।

## “श्रमण द्वारा उपकरण ग्राह्य है”

आत्म द्रव्य को छोड़कर सभी उपकरण, शरीर, शास्त्र, पाटा, चटाई, पिच्छी, कमण्डल आदि परिग्रह है, परन्तु आत्मविशुद्धि में सहायक है अतः ग्रहणीय है। तीर्थंकर को भी दीक्षा के बाद ऋद्धियाँ प्रकट न हो या केवलज्ञान न हो तब तक इन सब उपकरणों की आवश्यकता रहती हैं। केवलज्ञान होने के बाद भी मोक्ष न हो तब तक शरीर का आवलंबन भी आवश्यक है। अलग-अलग धर्म के अनुयायी अलग-अलग रंग के कपड़े, अलग-अलग देश अलग-अलग झण्डे रखते हैं क्योंकि यह उनका प्रतीक है। शास्त्रों का जो साधु पठन-पाठन व पढ़ व समझ सके उसके लिए यह ग्रहणीय है व जो इन्हें न समझ सके उनके लिए त्यजनीय है। जिस प्रकार चश्मे की जिसको आवश्यकता है उसे चश्मा रखना उचित है। द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुसार जो वस्तुएँ मोक्षमार्ग में सहायक है उन्हें साधु रख सकते हैं तथा जो बाधक है वह त्यजनीय है। पंचकल्याणक में स्वस्थ परंपरा को प्रारंभ करने के उद्देश्य से पिच्छी

कमण्डलु तीर्थकर को देते हैं।

तीर्थकरों का शरीर, शक्ति, संहनन, ऋद्धियों के कारण उन्हें उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु उनके ही समय में अन्य साधुओं को सभी उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे बाहुबलि भगवान् को दीक्षा के बाद उपवास के ( 1 वर्ष ) के कारण भोजन, केशलोंच, शास्त्र किसी भी उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि वह 1 वर्ष तक आत्मध्यान में लीन रहे और आत्मोपलब्धि प्राप्त कर ली। बाहुबलि भगवान् जड़ों में पानी डाल रहे थे अर्थात् आत्मध्यान कर रहे थे। उन्होंने शरीर, इन्द्रिय व मन को छोड़कर सभी बाह्य द्रव्यों का त्याग कर दिया था। तद्भव मोक्षगामी अधिक से अधिक 1 वर्ष का ही उपवास कर सकते हैं। मूलगुण से च्युत न हो अतः 'अपवाद' स्वीकार करते हैं। आहार साधु के लिए अपवाद है परन्तु श्रावक के लिए आहार देना धर्म है। साधु के लिए आवश्यक होते हुए भी अपवाद है। अपवाद भी धर्म है। शरीर का मल भी बल है यह मलधारी औदारिक शरीर ही मोक्ष जाने में सहायक है। अपवाद भी मोक्ष के कारण है। आहार, पिच्छी, कमण्डलु आदि अपवाद होते हुए भी मोक्ष में सहायक हैं। साधु अपवाद को नहीं रहने पर धर्म से च्युत हो जायेंगे। अपवाद ऐसा जानकर आहार ग्रहण नहीं करेंगे तो धर्म से च्युत हो जायेंगे। ज्ञान प्राप्ति के लिए ग्रंथों का आवलंबन लेना भी आवश्यक है।

धर्म वस्तु नहीं हमारे अंतरंग का भाव है। हम गलती करे तो दूसरों को भी गलत कार्य के लिए प्रेरित करते हैं। कोई व्यक्ति सच्चा हो सही कर रहा हो तो उसे गलत मानेंगे, सभी भेड़चाल से ही चलना चाहते हैं स्वयं का विवेक, गलत-सही का निर्णय नहीं कर पाते हैं। अपवाद का अर्थ दोष है। आत्मस्वरूप को छोड़कर सभी अपवाद है। धर्म ही शुद्धोपयोग है। शुद्धोपयोग ही हमारा स्वरूप है। भाव संयम से द्रव्य संयम होता है। 14 गुणस्थान तक पुद्गल द्रव्य रहता है। इसके बाद सिद्ध अवस्था में आत्म द्रव्य ही रहता है। आत्म द्रव्य को छोड़कर कुछ भी ग्रहण नहीं करना उत्सर्ग है। आत्म द्रव्य को छोड़कर सब परद्रव्य, अधर्म है। हमने स्वयं ने अनादि काल से सब गलत कार्य किये हैं अतः संसार परिभ्रमण कर रहे हैं। गुरुदेव ने बताया आत्म चिंता उत्तम है। काम चिंता मध्यम है, मोह चिंता अधम है, परचिंता अधमाधम है। जो भाव अशुद्धोपयोग से होता है वह सब हेय है। आत्मा की शुद्धि के लिए 28 मूलगुणों का पालन करते हैं। इससे आत्मशुद्धि न हो तो वह भी निषेध है। प्रवचन, धर्म, विश्वास,

सम्यग्दर्शन से प्रारंभ होता है। व्यवस्था में नहीं विश्वास में धर्म है। सच्चाई के रास्ते चलना कठिन है आज भीड़ में धर्म नहीं मूलछेद हो रहा है। आहार से उपकरण तक भी आत्मकल्याण के लिए नहीं तो वह छेद (दोष) है। मिथ्यादृष्टि भी श्रद्धावान् रहता है। निश्चय से स्व-शुद्धात्मा का ध्यान ही मोक्ष है। साधक के लिए शरीर, आहार, उपकरण आदि अपवाद है परन्तु इसके बिना मोक्षमार्ग को नहीं साध सकते हैं। बिना साधना से तीन काल में भी मोक्ष नहीं हो सकता है। इसलिए मोक्षमार्ग में अपवाद की आवश्यकता है। अपवाद सहयोगी, सहकारी व निमित्तकारी है। बिना अपवाद उत्सर्ग की प्राप्ति भी अपवाद है। छद्मस्थ अवस्था अपरिपक्व बीज के बराबर है। 14 गुणस्थान तक संसारावस्था है। केवल सिद्ध भगवान् ही अपवाद रहित है अरहंत, तीर्थंकर भी अपवाद सहित है।

## विनय

गुरु द्वारा दी हुई वस्तु का बहुमान करना चाहिए गुरु द्वारा प्रदत्त वस्तु को दोनों हाथों से विनय से नमस्कारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। विनय मोक्ष का द्वार है। विनय मोक्षमार्ग का मुख्य उपकरण है। विनय से हीन हुए मनुष्य की संपूर्ण शिक्षा निरर्थक है। विनय शिक्षा का फल है। विनय से योग्यता, पात्रता, गुणग्राहिता, ऊर्जा, अंतरंग शक्ति में वृद्धि होती है। दशलक्षण धर्म में “उत्तम मार्दव विनय प्रकाशे... मान महाविष रूप करहि नीच गति जगत् में... तथा सोलह कारण की दूसरी भावना व पूजन में पढ़ते हैं” विनय महाधारे जो प्राणी, शिव वनिता की सखी बखानी... आदि बहुत गा-गाकर पूजन करते हैं परन्तु देवशास्त्र व गुरु का विनय क्यों नहीं कर पाते? आचरण में क्यों नहीं ला पाते? इसका कारण है अहंकार, बहुमान नहीं होना, प्रगतिशील स्वभाव की कमी, परिवर्तनशीलता की कमी आदि कई कारण हैं। अनपढ़ों में व उच्च शिक्षित वैज्ञानिकों विदेशियों में विनय गुण अधिक पाया जाता है इसलिए विकास कर पाते हैं जो जितना गुणी होगा उतना अधिक विनयवान् होगा। जिस प्रकार आम के पेड़ पर आम अधिक लगने पर डालियाँ स्वतः ही झुक जाती हैं।

स्वयं का शरीर ही मोक्षमार्ग का प्रथम उपकरण है। यह महानतम उपकरण है। हमारा शरीर ही हमारा परमात्मा है संसार में जितने प्राणी हैं सबके शरीर में परमात्मा बैठा हुआ है अतः उनका शरीर मंदिर है। दूसरों को कष्ट देना परमात्मा को कष्ट देना है। ज्ञान-विज्ञान व शक्तियों का साधन शरीर हैं। शरीर को घृणित मानना आत्म पतन

का कारण है। जिस प्रकार विशाल वृक्ष (वट) की शक्ति उसके बीज में है। अतः इस भगवान् आत्मा शरीर का दुरुपयोग, अन्याय, अत्याचार, पाप क्रियाओं में नहीं करना चाहिए। “शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्” अर्थात् शरीर धर्म करने का माध्यम है इसके बिना धर्म नहीं हो सकता। शरीर को व्रत उपवास से भी अतिकृष भी नहीं करना चाहिए तथा अति विलासिता व भोग-विलास से व्यर्थ दुरुपयोग भी नहीं करना चाहिए।

**उपवास**—जिन उपायों से कर्मों का आहार नहीं होता वह यथार्थ उपवास हैं। जिन्होंने इन्द्रियों को जीतकर वश में कर लिया है वे मनुष्य भोजन करते हुए भी उपवासी हैं। जितेन्द्रिय मनुष्य सदा उपवासी होते हैं। अनशन दो प्रकार का होता है (1) साकांक्ष, (2) निराकांक्ष। साकांक्ष अनशन में कुछ समय व दिनों के लिए भोजन त्याग, इन्द्रिय दमन व कषायों को कम किया जाता है। निराकांक्ष में जीवन पर्यंत भोजन त्याग, इन्द्रियों को वश करना व कषायों को, राग-द्वेष को त्याग दिया जाता है। विषय कषायों से रहित ही उपवास है। क्रोध, मान, माया, लोभ तथा काम, भोग, विषय-वासना आरंभ परिग्रह रूपी आहार का त्याग किया जाता है उसे उपवास जानना चाहिए। जिस प्रकार कोरे कागज पर चित्र अच्छा बनता है उसी प्रकार ये सब विकार रहित कोरे मन पर उपवास करना हमें अधिक आत्मा के निकट ले जायेगा। इन दुर्गुणों से रहित ध्यान, पूजा, आराधना, स्वाध्याय, मौन आदि से आत्मा के समीप पहुँच सकते हैं। श्रद्धा, समता, शांति, प्रज्ञा, विनय द्वारा स्वयं को शांति मिलती है तथा शांत मन से की गई आराधना मोक्ष तक पहुँचाती है। जिस प्रकार गेंद खेलने से शारीरिक स्वास्थ्य लाभ होता है। गेंद व प्लेग्राउण्ड स्वास्थ्य लाभ में केवल माध्यम है। प्राणायाम, व्यायाम, योगसन भ्रमण में बिना आवलंबन के स्वास्थ्य लाभ होता है। आत्म तत्त्व का ज्ञान-भान-आनंद है। श्रमण सतत स्व-शुद्धात्मा का रसास्वादन व स्व-शुद्धात्मा में लीन, अनासक्तिपूर्वक आहार लेते हुए भी उपवास का फल है। ढोंग पाखण्ड से परे उपवास है। आत्मा को जानना बहुत कठिन है। अपनी आत्मा में ही परमात्मा बनने की शक्ति है। इसे स्व-प्रज्ञा से ही जागृत किया जा सकता है। स्व-प्रज्ञा से ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अभिनंदन का अर्थ आत्म विकास है।

जो आत्मा को परमात्मा बनाने का ज्ञान देते हैं वह सच्चे गुरु हैं।

व्यक्ति की उन्नति धर्म से होती है परन्तु धर्म सामूहिक उन्नति में कारण नहीं है।

गुरुदेव ने देश-विदेश का साहित्य पढ़ा है परन्तु जैन आगम से श्रेष्ठ कोई नहीं। पेट पापी नहीं हमारे भाव पापी है। आँखों देखा व कानों सुना भी श्रेष्ठ नहीं सत्य नहीं होता। कान अंतिम इन्द्रिय है अर्थात् अंत तक रहती है।

कीट-पतंगे, पशु-पक्षी कई वर्षों तक नहीं खाते परन्तु उपवासी नहीं है। आत्मा की भावना से आहार-विहार करते समय भी उन्हें दोष नहीं लगता। जो इन्द्रियों के भोग-विलास से रहित है जो सतत स्वाध्यायी है वह आहार करते हुए भी उपवासी है। स्वाध्याय करना सरल नहीं है वह हाथी के वजन को उठाने के जैसा है। इच्छा ही एषणा है। स्व-आत्म तत्त्व का अनुभव भी साधु निर्लिप्त होकर आहार करते हुए भी उपवासी है।

धर्म नवकोटि से मन-वचन-काय, कृत-कारित अनुमोदना से एकांत में करना चाहिए। देह से ममत्व रहित कोई समझे या न समझे, कोई प्रशंसा करे वा निन्दा करे। स्वयं की गलतियों को देखकर सुधार करना चाहिए।

कर्मों से महायुद्ध करने के लिए साधु आत्मध्यान का मुख्य आयोजन करते हैं।

अधिक संक्लेश, रोग, अहंकार, दिखावा, मायाचारी, अंतराय आदि आत्म प्रवचनों में बाधक है। आत्म चिंतन अधिक कठिन है। बाह्य धार्मिक क्रियाएँ करने का मुख्य उद्देश्य आत्मा को प्राप्त करना है।

**उपलक्षण**—बड़े वाक्य या बड़े संदर्भ या घटना को एक शब्द में या संकेत में कहना उपलक्षण है। स्व-आत्मा की रक्षा करना, राग-द्वेष रहित होना निश्चय अहिंसा है। भाव अहिंसा की रक्षा के लिए द्रव्य हिंसा नहीं करनी चाहिए। द्रव्य हिंसा व भाव हिंसा से रहित होकर आहार देना चाहिए।

**सापेक्ष सिद्धांत**—जिस प्रकार भोजन बनाने में अग्नि, पानी, सामग्री सबका होना आवश्यक है उसी प्रकार धर्म के लिए भी क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि भावों का होना आवश्यक है। वस्तु गुरुत्वाकर्षण के बल पर खड़ी रहती है उसी प्रकार धर्म का केन्द्र बिन्दु आत्मा है। निमित्त व उपादान का यथायोग्य बैलेंस न होने पर धार्मिक कार्य बिगड़ जाते हैं व आत्मा का पतन होता है। आत्मा का मूल समता है। आत्म स्वभाव नष्ट न हो इसलिए समता, शांति, निर्मलता में रहना चाहिए। उत्सर्ग यानि संपूर्ण त्याग। श्रावक व साधु का मुख्य उद्देश्य आत्मविशुद्धि है। आत्मकल्याण के भाव के बिना जो क्रियाएँ है वह धार्मिक भी हो तो भी व्यर्थ हैं।



नदी पार करने के लिए नौका (नाव) आवश्यक है इसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए पिच्छी, कमण्डलु, शरीर आदि बाह्य साधन हैं। शरीर के माध्यम से ही मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना की जाती है अतः शरीर को बनाये रखने के लिए आहार जरूरी है। जिस शरीर में भूख लगती है, औदारिक है, मल-मूत्र है उसी से मोक्ष प्राप्त होगा। पेट पापी नहीं बल्कि पेट के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। पेट पापी नहीं हमारे भाव पापी हैं। शरीर से कम पाप होते हैं भावों से अधिक पाप होते हैं।

उत्सर्ग एवं अपवाद की मित्रता रूपी चारित्र से कम कर्मबंध होता है। सभी जीव कषायों व लेश्याओं से प्रेरित होकर भोजन करते हैं। साधु के कोई शत्रु-मित्र नहीं है। बिना अपवाद उत्सर्ग भी नहीं, मोक्षमार्ग भी नहीं है। शुद्धात्मा की भावना सतत हर क्षण करने पर कर्मबंध कम होता है। कर्मबंध की प्रक्रिया आत्माप्रदेश में होती है। मैं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु हूँ यह भावना हमेशा जाप करते हुए पूजा पढ़ते हुए, हर धार्मिक कार्य करते हुए भानी चाहिए। पुण्य कार्य अभिषेक आदि में हिंसा होते हुए भी पुण्य बंध अधिक होता है। शुद्धात्मा रूपी जाज्वल्यमान अग्नि में कर्म जल्दी भस्म हो जायेंगे। गट्टर (नाली) का पानी भी द्रव्य दृष्टि से शुद्ध मिनरल पानी है। उसी प्रकार हम अभी संसारी हैं परन्तु द्रव्य दृष्टि से सिद्ध हैं। केन्द्र एक होता है उसके आरे करोड़ों भी हो सकते हैं। परन्तु केन्द्र से जुड़े रहने पर ही चालित होंगे उसी प्रकार धर्म के अलग-अलग पहलू पूजा-पाठ, सामायिक जप, तप, क्षमा आदि दस धर्म, सोलह कारण भावनाएँ सभी अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए ही हैं। इसे आत्मा से नहीं जोड़ेंगे तो वह धर्म नहीं हैं।

**स्वाध्याय**—स्वाध्याय से ही मोक्ष है। आगम पढ़ने से ज्ञान हो सकता है परमागम से मैं (स्वयं) को प्राप्त करने का ज्ञान होता है। आगमहीन अंधा है।

आगम और परमागम-आगम में सात तत्त्व, छः द्रव्यों का वर्णन, परमागम में मैं अर्थात् आत्म तत्त्व की प्राप्ति का वर्णन है। ज्ञान के समान इस संसार में दूसरा कुछ पवित्र नहीं है। आगम का ज्ञान, तत्त्वार्थ का श्रद्धान तथा संयमपना ये तीनों ही यदि एक साथ नहीं होवे तो मोक्ष नहीं हो सकता है। स्व-अध्ययन के लिए आगम निमित्त है। स्वाध्याय सतत संभव है। मोक्षमार्ग पर चलने वालों के लिए आगम ही चक्षु है। जिससे तत्त्व बोध होता है, मन का निरोध होता है, आत्मा शुद्ध होता है, मन एकाग्र होता है, जिससे आत्मा का बोध होता है। जो आत्मा को नहीं जानते वह अंधे हैं।

अंधा अंधे को मार्ग कैसे दिखा सकता है? जिस प्रकार माइक्रोस्कोप से दूर तक देख सकते हैं। लैंस से 10 लाख गुना बड़ा दिखाता है उसी प्रकार आगम से दूरदृष्टि व सूक्ष्मदृष्टि, अनेकांतवादी व स्याद्वादवादी दृष्टि बढ़ती है।

जैन धर्म में तीन का बड़ा महत्व है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्र। यह तीन रत्न हैं जिसने इनको प्राप्त कर लिया वह भवसागर अतिशीघ्र पार कर लेगा। त्रिगुप्तीधारी साधु होते हैं। मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को रोकने से कर्मास्रव नहीं होता है जिससे आत्मा की रक्षा होती है यह त्रिगुप्ति है। मन से जो रागादि निवृत्ति है वह मनोगुप्ति है। असत्य आदि से निवृत्त होना या मौन रहना वचनगुप्ति है। हिंसादि कार्यों से निवृत्त होना कायगुप्ति है। अशुभ कर्मों से बचना, संवृत होना वही संयत की गुप्तियाँ हैं। बिना दृढ़ श्रद्धा और सतत भावना के सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। माता-पिता-गुरु इनका भी बड़ा महत्व है। गुरु बिना सम्यक्दर्शन प्रारंभ ही नहीं होता। गुरुभक्ति विहीन शिष्य नियम से दुर्गति के मार्ग में संलग्न है। गुरुभक्ति बिना सब त्याग, तप निरर्थक है। ऊसर खेत में बोये हुए उत्तम बीज के समान है। आध्यात्मिक गुरु ही सब भ्रम तोड़ सकते हैं कि धन से सब कुछ नहीं खरीद सकते। धन के लिए पिता-पुत्र का पुत्र-पिता का, माता-पुत्र का, पुत्र-माता का वध कर देते हैं। गुरु डॉ. की तरह दोषों को जानकर उन्हें दूर करने की कोशिश करते हैं। अतः आध्यात्मिक गुरु को भगवान् से भी बड़ा बताया गया है।

जिस प्रकार सूक्ष्म जलवाष्प कण बड़ा होकर घनीभूत बादल बन जाता है उसी प्रकार स्व-आत्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए की गई पूजा, जप, तप, यात्रा, ध्यान, दस धर्म आदि मोक्ष प्राप्ति के लिए फलीभूत होंगे।

त्रिगुप्तीधारी ज्ञानी मुनि प्रचुर कर्मक्षय करता है। आत्मज्ञानी, भेद-विज्ञान से युक्त, निश्चय रत्नत्रय से संयुक्त, निर्विकल्प समाधि में स्थित मुनि एक उच्छ्वास में जितने कर्म क्षय करते हैं इतने कर्मों को ज्ञान से रहित जीव एक लाख करोड़ भवों में भी नाश नहीं कर सकता है।

### भवसय सहस्र कोड़ीहि

100,000,0000000

शत सहस्र करोड़  $100 \times 1000 = 100000 \times 10000000 =$

100,000,0000000

निर्विकल्प समाधिस्थ मुनि उच्छ्वास में जितने कर्म क्षय करते हैं उतने अज्ञानी व्यक्ति 1 लाख करोड़ भव में भी कर्म क्षय नहीं कर सकते। निर्मल परिणामों से, अभेद रत्नत्रय से, बाह्य में आध्यात्म गुरु से, आगम से मन-वचन-काय की गुप्ति सहित होकर अपनी आत्मा में भाव विशुद्धि से धर्म को अपनी आत्मा से जोड़ना चाहिए तभी अधिक कर्म क्षय होगा। जिस प्रकार टी.वी. इलेक्ट्रीसिटी होने पर ही चल सकती उसी प्रकार धर्म स्वयं में घटित होना चाहिए। सतत होना चाहिए मात्र दस लक्षण में नहीं। जिस प्रकार खाना बनाने के लिए गैस, पानी, सामग्री सभी की आवश्यकता पड़ती है सभी हो पर चावल ही न हो तो भात कैसे बनेगा। उसी प्रकार धर्ममय, तन्मय होकर आत्मा को परमात्मा रूपी भात बनाना है। साधु अतिथि है कोई तिथि नहीं अर्थात् हमेशा धर्म करते हैं किसी पर्व विशेष या तिथि विशेष में ही नहीं।

आगम व आध्यात्म नहीं जानने के कारण भाषा व शब्दों को हम नहीं समझते। आगम स्कूल, कॉलेज का विषय नहीं उसके ऊपर का विषय है। समाज का विषय नहीं क्योंकि समाज का गुणस्थान 1-4-5 तक ही है और आगम 6-7 गुणस्थान का विषय है अतः हमें कम समझ में आता है। अनुभव आत्मप्रदेशों में होता है। एक आत्मा का अनुभव दूसरी आत्मा से अलग होता है।

अंतर्मुहूर्त=1 समय 1 आवली से 48 मिनट में 1 समय कम। एटम बम से 1 सैकण्ड में जितना विनाश होता है उससे कई गुना अधिक कुदाल से खोदने में समय लगता है ठीक उसी प्रकार निर्विकल्प ज्ञानी, आत्मविशुद्धि से 1 उच्छ्वास में जितने कर्मों का क्षय करते हैं उतना अज्ञानी ( 1-5 गुणस्थान 6 गुणस्थानवर्ती भी त्रिगुप्तीधारी, आत्मविशुद्धि में नहीं है तो अज्ञानी ही है। मोही यथार्थ से अज्ञानी है।) 1 लाख करोड़ भवों में भी कर्म क्षय नहीं कर पायेगा। शिक्षा-आत्मविशुद्धि से मोक्ष, संवर व निर्जरा होती है। मैं का निज का, स्वयं का ज्ञान मुख्य है। स्वयं का अनुभव प्रधान है। धर्म आध्यात्म कोई व्यापार नहीं है। यह संसारी के अनुसार चलेगा तो वह धर्म नहीं है। अभेद रत्नत्रय अर्थात् ज्ञान, चारित्र्य व आचरण में एकरूप हो जाना जैसे खीर बनने के बाद उसमें दूध, शक्कर, मेवे सब एक रस हो जाते हैं।

जैन धर्म के एक सिद्धांत में लाखों, करोड़ों नीतियाँ आ जाती हैं।

चक्रवर्ती के पास तीन विधाएँ-विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका होती हैं परन्तु स्व को प्राप्त करने के लिए (मोक्ष) इन सबका त्याग करना पड़ता है।

पूर्ण गुप्ति 8वें गुणस्थान में होती है परन्तु मौन रहना, स्वाध्याय करना, ध्यान करना, आत्मचिंतन करना, समता में रहना भी गुप्ति है। स्वाध्याय में 12 तप + 3 गुप्ति समाहित है। पंचम काल में ज्ञान को अमृत कहा है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। आत्मज्ञान बिना तप जप परिश्रम व्यर्थ है। शरीर जड़ है। आत्मा को ही पुण्य-पाप, सुख-दुःख, लाभ-हानि, वेदना आदि मिलता है। उसका फल उसको ही भुगतना पड़ता है। वृत्तिपरिसंख्यान एक तप है जिसका अर्थ है इच्छाओं का निरोध करना अर्थात् जो मिला उसमें ही संतोष करना। धर्म के लिए शरीर माध्यम है। आत्मज्ञानी शरीर को अलंकृत व सुंदर दिखाना नहीं चाहता। वह निस्पृह, उदासीन होता जाता है। अष्ट प्रवचन मातृका अर्थात् 5 समितियाँ + 3 गुप्तियाँ स्वाध्याय में समाहित होती हैं। अतः स्वाध्याय परम तप है।

8वें गुणस्थान में निर्विकल्प समाधि में सामायिक पूर्ण होता है। नारकी से भी निगोदी अधिक पापी है। स्व-आत्म तत्त्व को नहीं जानना मिथ्यादर्शन/अज्ञान है। मैं ही आत्मा हूँ। यह सच्चा निश्चय सम्यक्दर्शन है। मैं स्वयं भगवान् बन सकता हूँ यह आत्मविश्वास है। हम बीज है सिद्ध भगवान् वृक्ष है। यह जीव 12वें गुणस्थान तक कर्मों से आबद्ध रहता है। संकल्प-विकल्प रहित, राग-द्वेष रहित ज्ञानी अंतर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। बिना दृढ़ श्रद्धा और सतत भावना के सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

जहाँ भीड़ हो वहाँ धर्म, शांति, समता, सत्य कभी नहीं हो सकता है। भीड़ में विवेक, संयम, सत्य का ज्ञान नहीं रहता अतः एकांत में ही धर्म होता है। अनैतिक कार्यों चोरी, बलात्कार, झगड़ों में निमंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती फिर धार्मिक कार्यों में क्यों? क्योंकि कोई धर्म करना नहीं चाहता। धर्म में रुचि नहीं क्योंकि अनादिकाल से यह जीव पाप कार्य ही करता आ रहा है अतः वही अच्छा लगता है। अज्ञानी जीव धर्म में रुचि नहीं लेते नींद आने लगती है। परन्तु यह जीव यह नहीं जानता कि समझ में न आने पर भी केवल श्रद्धा से सुनने पर भी वह निकट भव्य है, कर्म निर्जरा हो रही है। बिरले ही सुनते हैं और इसमें भी बहुत कम समझ पाते हैं। तत्त्व को जानकर उसका रहस्य तो कोई एकाध ही समझ पाता है। सुध-बुध रहस्य, स्वयं को अनुभव करना, धर्म को स्वयं में अनुभव करना, आचरण करना, तन्मय करना।

जो विनय से सुनते है समझ नहीं आता उसका भी ज्ञान अगले भव में काम आयेगा। अभ्यास, स्मरण रखने व आत्मा की जिज्ञासा रखने वाले बिरले ही होते है। अच्छा सोचना बड़ा धर्म है विपरीत सोचना अधर्म है। आत्मा का स्वभाव, आत्मा का धर्म, आत्म चर्चा करने वाले 6 गुणस्थानवर्ती साधु सर्वार्थसिद्धि के देवों से भी ऊपर है। यह देव 33 सागर तक तत्त्व चर्चा करते है फिर भी उनका गुणस्थान 4 ही है। आत्मा के विषय में जिज्ञासा है ऐसे प्राणी क्वचित् कदाचित ही मिलते है। जो आत्मिक प्रमोद में सुखी है तथा जिनकी अंतर्दृष्टि खुली है ऐसे आत्मज्ञानी दो-तीन अथवा बहुत हुए तो तीन-चार ही होते है किन्तु पाँच का होना दुर्लभ है। सर्वज्ञ भगवान् जितना जानते है उतना पूर्ण तो गणधर भी समझ नहीं पाते हैं उसका कुछ भाग ही वह ग्रहण कर पाते है। फिर उनका कुछ भाग प्रतिगणधर फिर आचार्य फिर उनके शिष्य आचार्य क्रम-क्रम से हमारे गुरु समझते है फिर वह हमें समझाते हैं। गुरु से ही हमें सही मार्गदर्शन मिलता है वे ही हमें आत्मबोध, आत्मचिंतन, शुद्ध-बुद्ध परमानंद बनाते है। फिर भी समझ न पाये तो श्रद्धान करना चाहिए। गुरु उपदेश देते है तो कोई सुनना नहीं चाहता है। सुनते है तो मनन नहीं करते है आचरण में नहीं लाते हैं। कष्ट होने पर ही गुरु को, भगवान् को याद करते है, पूजा-पाठ करते है। सभी जीव मनोरंजन चाहते है मन मंजन नहीं। गुरु के भाव स्व-कल्याण के साथ विश्व-कल्याण के होते हैं।

प्रमाद ही मरण है अप्रमाद ही अमृत पद है। संपूर्ण आगम जानने के बाद भी मूर्च्छावान् को सिद्धि नहीं मिलेगी। एक अणु मात्र भी अपना मानना मूर्च्छा मोह है। मैं, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, ऐसे आत्मज्ञान के बिना आगमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान तथा संयमपना भी कुछ कार्यकारी नहीं है। मोक्ष प्राप्ति में अकिञ्चितकर है। रात को नहीं खाना, पूजा-पाठ आदि प्राथमिक धर्म है। यह पूर्ण आत्मशुद्धि नहीं है। स्थूल जीव की रक्षा करना ही संयम नहीं है इसके साथ राग-द्वेष, कषायों का संयम अति-आवश्यक है। भाव विशुद्धि बढ़ने पर गुणस्थान (द्रव्य संयम) बढ़ता है। (कषायों का क्षयकर भाव विशुद्ध करने के लिए संयम है। निज शुद्धात्मा ही मैं हूँ अन्य कोई मेरा नहीं है। घर-बार, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, धन-संपत्ति यह हमारा है ही नहीं उसको छोड़ना, छोड़ना नहीं है। स्वयं की आत्मा ही सिद्ध अवस्था में साथ जायेगी। अंत में मोक्ष अवस्था प्राप्ति के पहले तक तो पुण्य-पाप रहेगा। फिर पाप छूटेगा पुण्य रहेगा अंत में पुण्य भी छूट जायेगा, मोक्ष अवस्था में पुण्य-पाप कोई नहीं रहता है।)

कृषि ही नहीं, व्यापार भी आरंभ ही है। मन-वचन-काय में प्रवृत्ति नहीं करना अनारंभ है। गृहस्थ अवस्था में आरंभ रहेगा ही।

जब तक आत्म संवित्ती नहीं तब तक सब क्रियाएँ करना धर्म नहीं। बुद्धि नैतिकता ही धर्म नहीं है उससे आगे धर्म है। क्रोध-मान-माया-लोभ मेरा आत्म स्वभाव नहीं है ऐसा समझकर क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं करना धर्म है। भारत में धर्म तो नहीं परन्तु नैतिकता भी नहीं।

**सम्यग्दर्शन**-देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा तत्त्व का श्रद्धान व स्व-आत्म तत्त्व का श्रद्धान तीनों होने पर सच्चा सम्यग्दर्शन होता है।

निर्विकल्प आत्मध्यान में मैं (स्वयं) का ज्ञान होता है। समता-शांति, आत्मविशुद्धि निश्चय धर्म है। निश्चय को पाने के लिए व्यवहार धर्म यानि बाह्य साधन पूजा-पाठ, जप-तप, दान आदि आवश्यक है परन्तु इसे श्रद्धा के साथ, आत्मविशुद्धि के लिए करना चाहिए। जिस प्रकार अधिक आग जलाने पर भोजन जल जायेगा, कम करने पर कच्चा रह जायेगा तथा चावल ही न रखने पर भात नहीं बनेगा वैसे ही आत्म को प्राप्त करने का उद्देश्य व बाह्य साधनों का उपयोग सब में संतुलन होना आवश्यक है। जो समताधारी है वह श्रमण है।

**संयम**-सम्यग्दर्शन, ज्ञान से युक्त होकर जो चारित्र होगा वह संयम होगा। धर्म को आत्मा से भिन्न मानना शरीर को शव मानने के बराबर है। धर्म में दृढ़ता को क्रूरता समझना भूल है। आत्मज्ञान, स्वयं का ज्ञान, केवल क्रोध के अभाव से क्षमा नहीं, क्षमा भावों में हमेशा रखनी चाहिए। कम ज्ञान होने को बालक कहते हैं चाहे व्यक्ति उम्र में बड़ा हो पर ज्ञान कम हो तो वह बालक ही कहलायेगा। उम्र कम होने पर भी अनुभव व ज्ञान अधिक होने पर वह वृद्ध भी कहा जा सकता है। संयम, नियम और तप से तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान से जो आत्मा को ध्याता है वह साधु परम समाधि को प्राप्त करता है। वन में निवास करना, काया का क्लेश करना, अनेक उपवास करना, मौन रहना आदि सब कार्य समता में रहकर करने से ही कार्यकारी है। जिस प्रकार व्यक्ति दर्पण में प्रतिबिंब देख रहा हो तब उसका दर्पण टूट जाये तो व्यक्ति नहीं मरता है उसी प्रकार हमारी समता में रहना मूल है बाह्य क्रियाओं में कुछ दोष भी लग जाये पर समता में दोष नहीं लगना चाहिए। समता में शत्रु-मित्र सब समान होते हैं। आत्मा को जानने वाले का कोई शत्रु-मित्र नहीं होता है। वह किसी से राग-द्वेष

नहीं करते है तथा जो मैं का स्वरूप नहीं जानता वह आत्मा को जान ही नहीं पाता, वह जानने में सक्षम ही नहीं। शुद्धात्मा का स्वरूप लड़ाई-झगड़ा करना, राग-द्वेष, ईर्ष्या-घृणा करना नहीं है। ज्ञानी व्यक्ति विद्वान और विनयवान् ब्राह्मण और ग्राम में, हाथी में, कुत्ते में और कुत्ते को खाने वाले मनुष्य में समदृष्टि रखते हैं।

कम सुनने, कम बोलने पर अधिक समझना अधिक योग्यता है। अधिक बोलने, अधिक सुनने पर कम समझना कम योग्यता है। सामायिक में रहना परम धार्मिकता है। समता के सामने सब धर्म के कार्य छोटे होते है। समताधारी किसी से न डरते है न किसी को डराते है। न स्वयं उद्वेग में रहते है न उद्वेग करते है।

गुरुदेव अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, मूर्ख सबसे शिक्षा लेते हैं। श्रावकव्रत, मुनिव्रत सब समता में है। विस्तार से पढ़ने पर ध्यान विस्तृत विकेन्द्रित हो जाता है। सूत्र से ध्यान केन्द्रित होता है। सूत्र में गहन विषय होता है परन्तु ज्ञानी ही इसे समझ सकते हैं। जो दूसरों को ठगता है वही ठगा जाता है।

**आध्यात्म एक लाभ अनेक**-आध्यात्म एक होता है उसमें अनेक लाभ समाहित होते है। आध्यात्म से तन-मन-आत्मा स्वस्थ होते है। आध्यात्म से ध्यान केन्द्रित होता है। ध्यान केन्द्रित होने पर मन व इन्द्रियाँ चंचल नहीं होती हैं। जिस प्रकार एक बंदर को डोरी से बांध दे तो वह अपनी सीमा में ही रहता है और कछुए को खुला छोड़ दे तो वह समुद्र में अपने जीवन में 50-60 लाख मील की दूरी भी तय कर लेता है। चिदानंद का अर्थ है चित्त आनंद में रहे। चिदानंद एक निज स्वभाव है। उसे आत्म केन्द्रित करने पर ही चिदानंद लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। जो आत्मा को नहीं जानते वह आत्महत्यारे है। धर्म का प्राण आत्मा है। आत्मा से च्युत होने पर वह भटक जायेगा, वह रागी-द्वेषी-कामी हो जायेगा। (यह आचार्यश्री कनकनन्दी ने नंदौड़ में कहा।)

जो मोह, राग, द्वेष नहीं करता है वह कर्म क्षय करता है-आचार्यश्री यहाँ बताते है कि जो सचित्त, अचित्त पदार्थों जैसे पिच्छी, कमण्डलु, शिष्य, शिष्याओं या किसी भी वस्तुओं में आसक्ती, मोह या राग-द्वेष है तो वह बंध का कारण है। पतन का कारण है। अतः साधु शिष्य में मोह नहीं वात्सल्य रखते हैं।

**स्वअर्थ-स्वआत्मा**, निज शुद्धात्मा, मैं में ही स्थिर हो जाना ही मोक्ष है। आध्यात्म को नहीं जानने के कारण ही धर्म में, धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़े हो रहे है।

रत्नत्रयधारी श्रमण अपने आप को क्या मानते हैं? रत्नत्रयधारी श्रमण अपने आप को अरहंत, सिद्ध मानते हैं क्योंकि उनका लक्ष्य भी सिद्ध पद पाना अपनी आत्मा को परमात्मा बनाना है।

जितने-जितने अंश में आत्मा की विशुद्धि बढ़ती जाती है आत्म शक्ति बढ़ती जाती है यह कर्ममल को क्षय करती है। मैं को जानने से पूर्व कर्म से आवृत्त होने पर शक्ति प्रकट नहीं हुई थी। करणानुयोग के अनुसार कर्म का क्षय या उपशम गुरु उपदेश बिना नहीं होता। निगोदिया कोई पाप कार्य नहीं करते, जीवन भर भूखे रहते हैं, किसी प्रकार का अन्याय, अत्याचार नहीं करते परन्तु मिथ्यात्व के कारण संसार परिभ्रमण करते हैं। श्रद्धा में अनंत शक्ति है। श्रद्धा के पहले भद्र परिणाम होने चाहिए। भद्र मिथ्यात्व के बाद सम्यक्त्व होगा। सम्यक्दर्शन होने के बाद पुण्यास्रव बढ़ता जाता है। 13वें गुणस्थान तक बढ़ता है। वर्तमान में जम्बू स्वामी के बाद शुद्धोपयोगी मुनि कोई नहीं है। सम्यक्दर्शन होने के बाद शुभोपयोग प्रारंभ होता है। शुद्ध भाव में आस्रव बंध नहीं है। अशुभ भाव में आस्रव बंध होता है। शुभ भाव में कुछ आस्रव बंध होता है।

साधु का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। भले हमें अभी नहीं मिलेगा परन्तु लक्ष्य मोक्ष ही है। व्यवहार धर्म निश्चय धर्म में सहायक है परन्तु पूर्ण नहीं। निश्चय से शुद्धोपयोगी मुनि ही सिद्ध है। व्यवहार से शुभोपयोगी मुनि भी सिद्ध है। निश्चयनय से सिद्ध ही जीव है। व्यवहार से 14 गुणस्थानों में स्थित, 14 मार्गणा में स्थित संसार के सभी जीव सिद्ध है। शुभोपयोग करते हुए भी मुनि यह चिंतन करते हैं कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। जिस प्रकार सम्मेदशिखर जाने के लिए मार्ग, गाड़ी, यात्रा, सम्मेदशिखर नहीं है वहाँ पहुँचने पर भी पहाड़ की वंदना का पुरुषार्थ करना पड़ता है ठीक उसी प्रकार शुभोपयोगी मुनि को सिद्ध बनने के लिए शुद्धोपयोगी रूपी पहाड़ चढ़कर आत्मविशुद्धि प्राप्त करनी है। निश्चयनय से सभी जीव सिद्ध है। परन्तु व्यवहार से सभी जीवों में चेतना है परन्तु सिद्ध जीवों में अधिक अर्थात् पूर्ण शुद्ध चेतना पायी जाती है। व्यवहार से एक इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय सभी जीव है। शुद्ध अवस्था वाले अशुद्धावस्था वालों को संबोधन करते हैं। मैं का ज्ञान होने पर निर्भयता, निर्मलता, शुद्धता से परिपूर्ण हूँगा। जिस प्रकार पानी, बर्फ, भाप में द्रव्य वही रहेगा ठीक सिद्ध अवस्था में भी द्रव्य वही रहेगा। मेरा आत्मा शुद्ध है। निश्चयनय से सिद्ध जीव ही जीव है, व्यवहार से सभी जीव है। स्वयं को सिद्ध बनाने के लिए पूजा-पाठ, अर्चना-आरती है जहाँ शुद्धोपयोग



का वर्णन है वहाँ शुभोपयोग गौण है। 13 गुणस्थान तक आस्रव होता है। कुछ पूजा-पाठ पद्धति में भेद होने से लड़ाई, संक्लेश करना धार्मिक संकीर्णता है। केवल पूजा, अभिषेक, आरती से मोक्ष नहीं मिलने वाला है। भाव में विशुद्धि प्रमुख है फिर धर्म के नाम पर भाव खराब नहीं करना चाहिए। धर्म में कोई कार्य हमको गलत लग रहा है वह आगम के अनुसार सही भी हो सकता है। गलत भी हो सकता है, हम निर्णय करने वाले कौन हैं? फिर हम पाप-पुण्य के नाम पर संक्लेश कर क्यों पाप कमाये? जो कर रहा है उसको पाप-पुण्य लगेगा, उसका पाप हमको तो नहीं लगने वाला ऐसा विवेक रखकर सबको वात्सल्य भाव से पूजा-पाठ-अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ करनी चाहिए, कोई वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए, पूजा-पाठ-अभिषेक आदि शुभोपयोगी क्रियाएँ की जाती हैं। मिथ्यात्व, कषाय, विषय-वासना, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अहंकार सबका त्याग होने पर ही शुभोपयोग होगा। बुरा कार्य करते हैं जैसे चोरी, डकैती, मिलावट, कालाबाजारी, बलात्कार तब कोई यह नहीं सोचता की इसका फल क्या मिलेगा? परन्तु कुछ समय के लिए पूजा-पाठ, विधान करने पर तुरन्त सोचते हैं व प्रार्थना करते हैं कि मुझे यह मिल जाये, यह अनुचित है। अच्छे कार्य करते जाये फल स्वयंमेव मिलते जायेंगे। शुभ-अशुभ, संकल्प-विकल्प, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-अहंकार, राग-द्वेष, कषायों से दूर रहने पर शुभोपयोग होगा।

प्रतिस्पर्धा दूसरों से केकड़े की तरह न करे। प्रतिस्पर्धा करनी हो तो स्वयं से ब्लेड की तरह करे जो खुद को निखारती है। समाज के अधिक लोग अहंकार से निर्मित है अहंकार के कारण प्रेम नहीं कर पाते हैं।

सहस्र नाम, स्तुति, पूजा सब में भगवान के गुणों की प्रशंसा, सभी जीवों को समान समझना, आदर्श व्यक्ति के गुणों का अनुसरण, अनुकरण करना है। केवल पशु-पक्षी की हत्या करने वाले को ही कसाई नहीं कहते बल्कि क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या से लिप्त हर कार्य कषाय है। जिससे आत्मा का घात होता है वह हिंसा है। भाव की कलुषता निगोदिया जीवों में अधिक होती है।

श्रमण को 11वें गुणस्थान में भी आस्रव होता है। जितनी भाव विशुद्धि उतना कर्म आस्रव कम होता है। आत्मा पर आधारित पुण्य-पाप है। भाव विभिन्न होने पर कर्म की विभिन्नता, विचित्रता परिणत होती है। जैसे-जैसे भाव होंगे वैसे-वैसे कर्मबंध

होंगे। कर्म जैसे होंगे कर्मफल उस प्राणी को वैसा ही भोगना पड़ेगा। कर्म के कोई भागीदार नहीं होता है। पशु-पक्षी, सुख-दुःख, गरीब-अमीर, कीड़े-मकोड़े आदि भिन्न-भिन्न पर्याय कर्म के अनुसार ही मिलती है। जिनेन्द्र भगवान् की वंदना से एक जन्म के ही नहीं किन्तु कई जन्मों में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।

**प्रेम न बाडी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।**

**राजा प्रजा जेहि रूचे, शीश देय ले जाय।।**

शुभोपयोग बिना मोक्ष संभव नहीं है। शुभोपयोग बिना मोक्षमार्ग ही नहीं है। वर्तमान में आचार्य, उपाध्याय, साधु इसीलिए मोक्षमार्ग में लगे हुए हैं। वे जानते हैं कि इस भव में मोक्ष नहीं है परन्तु मोक्ष पाने के लिए इस मार्ग पर चलना आवश्यक है। प्रवचन का अर्थ सिद्धांत ग्रंथों का अर्थ, चिंतन, मनन, चतुर्थ गुणस्थान से लेकर साधु-संत तक में वात्सल्य रखना, चर्तुविधि संघ की भक्ति, पूजा, आराधना, आरती, आहार-दान आदि को प्रवचन-भक्ति कहते हैं। शुद्धोपयोग में पहुँचने के लिए शुभोपयोग माध्यम है। परम समाधि में आत्मध्यान से नीचे आने पर अशुभ से बचने के लिए शुभोपयोग में रहते हैं। शुभोपयोगी श्रमण वात्सल्य, विनय, गुणानुराग से युक्त होता है।

शुद्धात्मा का अनुराग युक्त चारित्र शुभोपयोगी श्रमणों का लक्षण है। शुद्धात्मा के लिए प्रयासरत है वह साधु है। शुद्धात्मा के उपासक व उपदेशक निर्ग्रंथ गुरु है। संपूर्ण उपायों के समूह को निर्युक्ति कहते हैं। जो कार्य कर रहे हैं उसमें ही मन स्थिर रखना, उसमें ही लीन होकर कार्य करने पर कार्य अच्छा होता है। ठीक इसी तरह इन्द्रिय व मन को स्थिर रखना चाहिए। इन्द्रियों व मन का दास नहीं बनना चाहिए। अनुशासन के बिना न शक्ति न ज्ञान बढ़ सकता है। धार्मिक बनने के लिए इन्द्रिय व मन को वश में करना आवश्यक है। धर्म विवशता से नहीं विश्वास से होता है। धार्मिक क्रिया के माध्यम से स्वयं को वश में करना, मन को स्व-आत्म चिंतन से वश करना चाहिए। मैं इन्द्रियों से भिन्न हूँ। भाव शुभ तभी होंगे जब हम इन्द्रिय व मन के अधीन न होंगे। समाय, अय पुण्य के पर्यायवाची है। अपने सहधर्मी के समूह में जो रहते हैं उन्हें स्वयुश्य कहते हैं। प्रेम वात्सल्य रुपये से नहीं मिलता है अथवा वृक्ष से नहीं मिलता है यह तो हृदय की उपज है।

पर्व जोड़ने के लिए, संगठित होने के लिए तथा धर्म को निर्विच्छीन क्रिया में जोड़ रखता है।

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने नंदौड़ में धर्मसभा को संबोधित करते हुए बताया कि गुणी व्यक्ति की प्रशंसा करना ही पूजा है। पूजा में भगवान् का गुणानुवाद ही किया जाता है। पूज्य के गुण हममें भी विकसित हो वास्तव में यही भावात्मक पूजा है अष्ट द्रव्य से पूजा द्रव्यात्मक पूजा है। वर्तमान में सभी संसारी जीव एक-दूसरे के दोषों को ही देखते हैं उसके गुणों को नहीं देखते व स्वयं के दोषों को भी नहीं देखते इसी कारण से इस भव में भी दुःखी है व अगले भव में भी नरक जाकर दुःखी होना है। व्यक्ति में अनंत दोष है और केवल एक ही गुण है तो गुणी व्यक्ति गुण को ही देखेगा। परन्तु वर्तमान में अधिक लोग दोष को देखकर निंदा करके ही दुःखी है। सती अंजना, सती सीता, द्रौपदी, सगर चक्रवर्ती के 60,000 पुत्र, श्रीपाल आदि सभी लोगों ने निंदा करके ही अनंत भवों तक दुःख भोगे हैं। सच्चा गुरु निंदा करना तो दूर सुनेगा भी नहीं क्योंकि सुनकर भी अनुमोदना का पाप लगेगा अतः निंदा नवकोटि से नहीं करनी चाहिए और यदि किसी भी व्यक्ति में छोटा-सा भी गुण दिखाई दे तो उसे अनुमोदना करके, प्रोत्साहित, प्रशंसा, गुणानुवाद से पुण्य संचय करना चाहिए।

गुरुदेव ने बताया कि विरोधी हिंसा करने वाले नरक नहीं जाते। परन्तु निंदा के कारण 70 कोड़ा-कोड़ी सागर मिथ्यात्व का बंध हो जाता है जिससे निंदक संसार परिभ्रमण करता रहता है। बहुत सारे राजा युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते-करते वैराग्य हो जाने के कारण साधु बनकर युद्ध क्षेत्र में ही मोक्ष चले गये हैं। साधु शिष्यों को डाँटते हैं परन्तु पापी, दुष्ट, रागियों का दोष जानते हुए भी इन्हें कुछ खोटा नहीं बोलते। शिष्यों का उद्धार करना चाहते हैं अतः उन्हें सुधार के लिए डाँटते हैं। साधु परमागम का उपदेश देते हैं जिससे अपने शिष्यों का स्तर ऊपर उठे। गुरुदेव शिष्यों को उपदेश देते हैं व स्वयं सदा शुभोपयोग से शुद्धोपयोग में पहुँचने की भावना रखते हैं। श्रावक को भी सामायिक के समय व अन्य समय में शुद्धोपयोग की अर्थात् मैं अरिहंत हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं आचार्य-उपाध्याय व साधु हूँ, मैं राग-द्वेष व चारों कषायों क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हूँ, मैं अहिंसक, सत्य, अचौर्य, शीलवान्, अपरिग्रही हूँ, मैं अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख से सहित हूँ, मैं आठों कर्मों से रहित शुद्ध, निरंजन, निर्मोही, निराडम्बर, निष्पाप हूँ, मैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित सच्चिदानंद, परमानंद हूँ। ऐसी भावना करनी चाहिए।

एक मिथ्यादृष्टि के आहार करने व एक सम्यक्दृष्टि के आहार करने व

शुभोपयोगी साधु के आहार करने में जमीन-आसमान का अंतर है। शुभोपयोगी साधु अनासक्त रहकर शरीर को धर्मध्यान का साधन मानते हुए औषधि रूप में आत्मा में लीन होकर सतत आत्म-चिंतन पूर्वक आहार करते हैं अतः साधु आहार करते हुए भी उपवासी हैं। आत्मध्यान में रहते हुए आत्मा में लीन होते हुए आहार करना उपवास व रस त्याग से भी श्रेष्ठ है। समताधारी गुरु (साधु) पापी, दुष्ट जीव को देखकर साम्य भाव रखते हैं उन्हें देखकर कृद्ध, संक्लेशित नहीं होते हैं। उनसे भी शिक्षा लेते हैं कि पापकर्म के उदय से यह जीव रागी, मोही, पापी है उनके प्रति दुर्भाव कभी नहीं रखते हैं।

स्वयंभू रमण समुद्र में महामत्स्य छः माह तक समुद्री जीवों को खाता रहता है छः महीने तक सोता रहता है तब उसके कान में तंदुल मच्छ केवल कान का ही मैल खाता है परन्तु भावों से सोचता है कि इसके मुँह में यह कितने सारे जीव आ रहे हैं, मैं होता तो इन्हें खा लेता इतना भाव करने से ही वह सप्तम नरक में जाता है तथा वह अनेक जीवों की हत्या करने वाला महामत्स्य भी सप्तम नरक जाता है अतः भावों से उतनी ही हिंसा का पाप लगेगा जितना वास्तव में करने से। वर्तमान में लोग भावों से बहुत सारे पाप कर लेते हैं।

समस्त शास्त्रों को पढ़कर, जानकर, अनुभव, लोकस्थिति जानकर भी प्रशांत, प्रकृष्ट प्रज्ञा से युक्त होना प्राज्ञ है।

**सुख-दुःख** = दूसरों को सुख पहुँचाना ही पुण्य नहीं, दूसरों को दुःख पहुँचाना ही पाप नहीं है। दूसरों का दिल स्वयंमेव दुःखी हो जाय तो यह पाप नहीं। अभी तक हम सब इतना ही जानते थे कि दूसरों का दिल दुःखाना पाप हैं। हमारे महान् आचार्यों ने बहुत बताया है परन्तु हमारे पास कनकनन्दी गुरुदेव जैसे आचार्यों की कमी है जो हम इतने गूढ़ रहस्यों को जान नहीं पाते। गुरुदेव ने बताया कि दिल दुःखाना पाप है तो हमारे तीर्थंकर, गणधर, आचार्य सब पापी हो जायेंगे क्योंकि जब वह राज-पाठ, माता-पिता, स्त्री-पुत्र, अचिन्त्य वैभव को छोड़कर साधु बने तो उन्होंने सबका दिल दुःखाया ही है परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि साधु बनने के पीछे उनका उद्देश्य स्वयं को ज्ञानी, गुणी, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, आत्मा को परमात्मा बनाना था उनका उद्देश्य सबको दुःखी करना नहीं था।

संसारी जीव जब शादी करता है तो स्वयं भी खुश होता है व उसके साथ

सभी परिवार के लोग, सगे-संबंधी सब खुश होते हैं इसमें किसी का भी दिल नहीं दुःखता है परन्तु यह पाप कार्य है इससे आत्मकल्याण होने वाला नहीं है। दीक्षा लेते समय कष्ट होता है परन्तु सुख देने वाली है। वैश्या मीठा बोलती है परन्तु वह भाषा समिति नहीं है बल्कि मायाचारी रूप पाप से वेष्टित है। मैं कैसा हूँ? मेरा स्वभाव कैसा है? यह चिंतन करना चाहिए यदि मन चंचल है, मन कलुषित है तो हम पापी हैं। जो स्वयं प्रकाशित है वह दूसरों को प्रकाशित ही करेगा। स्वयं को सुख देना, पवित्र करना ही पुण्य है। दूसरे प्रसन्न हो या अप्रसन्न जिसका भाव खोटा है वह पापी ही है। आत्मकल्याण करते समय दूसरों का दिल स्वयंमेव दुःख जाये तो आत्मकल्याण ही श्रेयस्कर है। स्व को सुखी करना ही परम धर्म है। परन्तु दूसरों को सुख देने की क्रिया में स्वयं को दुःख होता है तो धर्म नहीं है। जिस प्रकार बल्ब में कवर चढ़ाने से प्रकाश रंगीन दिखता है वास्तव में वह श्वेत प्रोटोन है इसी प्रकार आत्मा के ऊपर राग-द्वेष, कषायों का कवर चढ़ा हुआ है अतः बुरे कार्य अच्छे व अच्छे कार्य बुरे लगते हैं। गुरुदेव की तरह हमें समदृष्टि बनना चाहिए तभी हमारा उत्थान संभव है। आध्यात्मिक रहस्य यह है कि अज्ञानी ज्ञानी को पगले समझते हैं व ज्ञानी अज्ञानी को पगले समझते हैं। शुभ परिणामों से किया गया तपश्चरण पुण्य का कारण है तथा अशुभ परिणामों से किया गया व्रत, तप, पूजा सब पाप कार्य है। लगभग 100 प्रतिशत लोग पाप कार्य ही करते हैं। मुनियों की अलौकिक प्रवृत्ति होती है। लकवा ग्रसित जीव, पेड़ आदि व्याभिचार न करते हुए भी व्याभिचारी हैं। अशुद्ध जीव शुद्ध कार्य न कर पाने पर भी पाप में लीन रहते हैं जिस प्रकार तंदुल मच्छ। बहार के कार्य में असमर्थ होने पर भी मन-मन में भाव कलुषित होने पर भी पापबंध होगा। तीर्थकर सब छोड़ने के लिए बोलते हैं तो कष्ट देते हैं, ऐसा नहीं है इसी में आत्मकल्याण है अतः दिल दुःखाना पाप नहीं है। मनुष्य जन्म दुर्लभ है परन्तु तभी सार्थक होगा जब आत्मकल्याण में लगेगा। हमें दूसरों का मन भी न रखना चाहिए व स्वयं मनमानी भी नहीं करनी चाहिए। मुनि तपश्चर्या द्वारा स्वयं को दुःखी व ज्ञानाभ्यास द्वारा स्वयं को सुखी बनाता है। सभी धर्मों में शरीर को कष्ट देने पर ही मोक्ष बताया गया है। कषाय दमन, इन्द्रिय दमन करते समय शरीर को कष्ट होता है परन्तु आत्म सुख में निमग्न है अतः वह सुखी है। त्याग ही धर्म नहीं है, तप-त्याग शाश्वत सुख के लिए है। सुख ही मोक्ष है। ‘मुनीनाम् भवति अलौकिक वृत्ति’ साधु केवल 22 परीषह सहन करते हैं, परन्तु संसारी

22000 परीषह सहन करते हैं परन्तु वे सांसारिक कष्ट को कष्ट नहीं समझते हैं इन परीषहों में ही रच-पच जाते हैं। पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ व शुद्ध भावों पर आधारित है। दूसरों की कमियों से गुरुदेव बहुत शिक्षा लेते हैं, पापी, कपटी से अधिक सीखते हैं। पापी व पुण्यशाली दोनों से पुण्य बांधते हैं। हमारा परिणाम शुभ है, यदि हम दूसरों को कष्ट भी दे तो वह पुण्य बंध है। बंदर का नाच देखकर बच्चे हँसते हैं उसी प्रकार गुरुदेव हमारी अज्ञानता देखकर हँसते हैं। प्रज्ञा-आध्यात्मिक अनुभव होने से गुरुदेव का ज्ञान प्रखर है। आँखों से देखा हुआ भी सत्य नहीं है।

**दीक्षा गुरु से शिक्षा गुरु श्रेष्ठ है**—दीक्षा देने में दो-चार घंटे लगते हैं। परन्तु शिक्षा देने में जीवन भर मेहनत करनी पड़ती है। जिस प्रकार जन्म देने से पालन-पोषण-संस्कार देना अधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा गुरुज्ञान भी देते हैं, उसको आचरण में लाने के लिए बार-बार शिष्य को डाँटकर टोककर सुधारते हैं। स्वाध्याय परम तप करते हैं व कराते हैं। उपदेश देते हैं जिससे अज्ञान रूपी अंधकार दूर होता है। जिस प्रकार कुम्हार अंदर हाथ रखकर ऊपर घड़े को चोट मारकर व्यवस्थित, सुंदर, उपयोगी बनाता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा गुरु भी शिष्य को अपने से भी महान् बनाना चाहते हैं।

श्रावक को शुभोपयोग की क्रियाएँ दान-पूजा अधिक करनी चाहिए। परन्तु इससे ही मोक्ष नहीं हो सकता। चक्रवर्ती कितना भी दान करते हैं, विधान रचाते हैं परन्तु सर्वस्व त्याग कर दीक्षा लेने के बाद ही मोक्ष होता है। मोह बुद्धि, जड़ बुद्धि के कारण हम गुणस्थान का भेद नहीं समझ पाते हैं। श्रावक में शुभोपयोग की क्रियाएँ अधिक रहती हैं परन्तु उत्कृष्ट शुभोपयोग साधु को 7वें गुणस्थान में ही होता है। आत्मशक्ति, जागृत करने के लिए पाप क्रियाओं से निवृत्त होने के लिए शुभ क्रियाएँ दान, पूजा, विधान, भक्ति, आरती करनी चाहिए। कर्म से सब पराधीन होते हैं।

गृहस्थ गंदे कपड़े की तरह हैं। गृहस्थ का मन चंचल होता है। किंपाक फल ऊपर से सुंदर पर खाने पर जीवन लीला समाप्त कर देता है ठीक उसी तरह संसारी सब जीव व वस्तुएँ ऊपर से सुंदर परन्तु आत्मा का घात करने वाली हैं।

जिस प्रकार भूमि कंकर रहित कोमल, मृदु, उपयोगी होगी तो फसल अधिक उत्तम होगी। ठीक उसी प्रकार संसारी लोगों की जितनी भावना, मन, हृदय कोमल, सरल, सहज, निर्मल होगा उससे दान-पूजा करके वह अधिक फलदायी पुण्य बंध

करने वाली होगी। द्वेष रहित होकर दान देने से फल विशेष होगा। बीज के बिना पौधा नहीं हो सकता उसी प्रकार भाव के बिना पुण्य नहीं हो सकता।

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि जिस प्रकार वटवृक्ष का बीज राई से भी छोटा होता है। परन्तु वृक्ष बड़ा, मोटा, घना, मजबूत, विशाल होता है ठीक उसी प्रकार धार्मिक क्रिया पूजा-पाठ कम किया जाये परन्तु भाव शुद्ध हो तो छोटी-सी क्रिया से भी अधिक पुण्यार्जन हो सकता है। सूअर, कुत्ता, सर्प, मेंढक, शेर, बंदर, नेवला शुभ भावों से अनुमोदना से स्वर्ग व परंपरा से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। बीज को देखकर उसकी शक्ति व किसका बीज है यह पता नहीं लगता जो उसका अनुभवी है वही जान सकता है। इसी प्रकार धार्मिक क्रिया के समय हमारे भाव कितने उच्च व निर्मल हुए यह सर्वज्ञ भगवान् ही जान सकते हैं। आत्मशक्ति जाग्रत करने के लिए पाप क्रियाओं से निवृत्त होकर शुभ क्रियाएँ जिसमें भाव अधिक शुद्ध हो आहार-दान, पूजा-भक्ति, आरती, स्वाध्याय आदि करने चाहिए। पुण्य बरगद ( वटवृक्ष ) की तरह फल देता है।

पात्र विशेष से शुभोपयोग का फल विशेष होता है। जिस प्रकार उत्तम भूमि में बीज बोने से अधिक व अच्छा फल मिलता है ठीक उसी प्रकार उत्तम पात्र को दान देने से उत्तम भोगभूमि, स्वर्ग, सुख, शांति, संपदा स्वतः ही बिना माँग मिलती है। माँगने से यदि इसका फल अधिक मिलता है तो भी निदान के कारण कम हो जाता है। अतः अच्छे कर्म करो फल की आशा मत करो। जिस प्रकार सूक्ष्म बीज धीरे-धीरे बड़ा घना वृक्ष बनता है उसी प्रकार पुण्य का फल अंत में मोक्ष मिलता है। स्व-शक्ति से आत्मा का पूर्ण विकास होता है तब आत्मा ही परमात्मा बनता है। आध्यात्मिक ग्रंथों में प्रकृति का अधिक वर्णन है। आगम में पेड़-पौधों के उदाहरण द्वारा ही समझाया गया है। हमारा विकास भी पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों से ही हुआ है। चीटियाँ 2.5 हजार करोड़ वर्ष से खेती कर रही हैं। लीव कटर ( मादा ) चिंटी खेती में मशरूम उगाते हैं। मनुष्य केवल 10,000 वर्षों से खेती कर रहे हैं।

पुण्य का फल विचित्र अनंत गुना होता है जैसे बीज को देखकर वृक्ष का अनुमान नहीं लगा सकते ठीक उसी प्रकार पुण्य के फल का चिंतन नहीं कर सकते। अनाज का व्यापार करने वाला अनाज को पैदा करना नहीं जानता ठीक उसी प्रकार पुण्य कैसे अर्जित किया जाता है वह हम नहीं जानते हैं। कर्म की विचित्र शक्ति है।

बीज जैसे पेड़ रूप में उसी प्रकार भावकर्म द्रव्यकर्म में परिणित होता है। हर बीज का अंकुर कोमल होता है। वट बीज की तरह हमारी आत्मा में अनंत शक्ति है। हर जीव में ब्रह्माण्ड है। शस्य-बीज से धान्य बनने तक जो प्रक्रिया होती है वह शस्य है। एक शुभ भाव जिस डिग्री से होता है उस डिग्री से फल प्राप्त होता है। विकास की प्रक्रिया अंदर से बाहर की ओर होती है व भौतिक विकास बाहर से अंदर होता है। जीव का विकास अंतरंग से होता है। आर्थिक विकास को ही सब कुछ मानने से संपूर्ण विकास नहीं होता है। संघर्ष से विकास नहीं होता है। डी.एन.ए., आर.एन.ए. कर्म से प्रभावित होता है। बैंक में 1 प्रतिशत से भी कम ब्याज मिलता है परन्तु धर्म में अनंत गुना फल मिलता है। अनाज पैदा करने में भी 100 गुना ही फल मिलता है। शलाखा पुरुष रावण, कंस, दो चक्रवर्ती आदि दंभ, अन्याय, अत्याचार के कारण नरक गये। सरसों सबसे जल्दी अंकुरित होता है। नारियल वृक्ष सबसे लेट 5-6 महीने बाद अंकुरित होता है। सरसों जल्दी नष्ट हो जाता है। आध्यात्म में अनंत शक्ति है इसके प्रभाव से पशु-पक्षी, मनुष्य आदि स्वर्ग चले जाते हैं व विकास करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्रशस्त भाव से शुभ भाव व शुभ भाव से पुण्य बंध होता है। अलग-अलग बीज अलग-अलग पात्रता, जलवायु, भूमि आदि के अनुसार अलग-अलग फल देते हैं। इसी प्रकार पुण्य का फल भी भाव विशुद्धि के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुसार विचित्र अलग-अलग फल देता है। जिस प्रकार जल की बूँद सीप में गिरने से मोती, ईख के वृक्ष में गिरने पर मिठी, निंबू के पौधे में खट्टी, सर्प के मुँह में विष रूप हो जाती हैं।

पुण्य के फल से द्वेष रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है। खेतों का दोष तृण है तृण रहित खेत में अनाज अधिक पैदा होता है ठीक उसी तरह कषायों रहित व राग-द्वेष रहित मन में पुण्य अधिक अर्जित होता है।

त्याग आकांक्षा, इच्छा बिना, स्वैच्छा से होता है। त्याग दयादात्र, सहयोग, दान से श्रेष्ठ है।

प्रवचनसार की समीक्षा आचार्य कनकनन्दी ने की है। उन्हें धवला, जयधवला आदि बड़े-बड़े ग्रंथों का ज्ञान है, सभी धर्मों का ज्ञान है, वर्तमान के विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास सभी विषयों का ज्ञान है, प्रकृति का



अनुभव है, अलौकिक गणित का ज्ञान है। मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि का भी ज्ञान है तभी इतने बड़े ग्रंथ की समीक्षा की है। उन्होंने समीक्षा करते हुए आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सत्य तथ्य का ही उद्घाटन किया है। सारगर्भित रहस्यों को जो हम पढ़कर नहीं समझ सकते उन्हें उदाहरण द्वारा सरल तरीके से समझाया है। गुरुदेव ने अनेकांतात्मक दृष्टिकोण से तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने गौतम गणधर के उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि सर्वज्ञ के अनुसार ही सब वर्णन किया अपने मन से कोई नहीं जोड़ा है।

**शिक्षा**—जिस विषय का पूर्ण ज्ञान हो उसी विषय में बोलना चाहिए। गुरुदेव संदर्भ अनुसार ही बोलते हैं भले उनको उस विषय का ज्ञान रहता है। जो आगम में वर्णन है वही वर्णन करना चाहिए अपने मन से जोड़कर वाद-विवाद, पंथवाद, मतवाद में नहीं उलझना चाहिए। इसमें पढ़ने से धर्म की बजाय अधर्म हो जायेगा। अनेकांत्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए। सत्य तथ्य को प्रकट करना चाहिए। लोगों के अनुसार नहीं बोलना व आचरण करना चाहिए। जो शास्त्रों में वर्णन है उसी अनुसार आचरण करना चाहिए कुतर्क नहीं करना चाहिए।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि संसारी लोगों के ज्ञान का कम विकास होता है परन्तु महापुरुषों के ज्ञान का विकास अधिक होता है क्योंकि उनमें सर्वजन हित की भावना सबका विकास करने का उद्देश्य रहता है। शिक्षा देने वाला गुरु बड़ा होता है। पहली क्लास को बार-बार पढ़ने से विकास नहीं होता है। आगे बढ़ने के लिए क्रम-क्रम से बड़ी क्लास का ज्ञान करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार धार्मिक विकास के लिए भी स्वाध्याय में प्रथमानुयोग से शुरू करके करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग को पढ़ने पर ही आध्यात्मिक विकास संभव है। कच्चा फल पकाने पर सड़ जाता है उसी प्रकार छोटे बच्चों पर शिक्षा का अधिक दबाव बच्चों के विकास में बाधित होता है। वैज्ञानिक जिस शोध को कर देते हैं उसी को बार-बार नहीं करते आगे-आगे करते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, नाम की भावना नहीं रहती है। स्वयं के विकास की भावना श्रेष्ठ है। भारतीय केकड़े की तरह एक-दूसरे की टाँग खींचकर गिरा देंगे आगे बढ़ने देना नहीं चाहते हैं। हम एक कदम आगे बढ़ेंगे भगवान् 100 कदम मदद करेंगे। सहयोग देने, पवित्र भावना से विकास अधिक होता है। क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धांत है To every action, there is an equal and opposite reaction अच्छे भावों से

अच्छा फल मिलता है। गुरुदेव किंग मेकर चाणक्य, राजचन्द्र बनना चाहते हैं। किंग का अर्थ है आत्मा भगवान् बनाने का उपदेश देते हैं। भ्रष्टाचार में भारत का 180 नं. है अर्थात् विकास कम, भ्रष्टाचार अधिक है। अतः पहले से बहुत गिर गया है। सिर कटाने पर भी सच्चा गुरु मिले तो वह सस्ता है।

**मैं (अहं)**—मैं को जाने बिना सब अज्ञानी है; शुद्ध आत्म उपदेश से शून्य है। छद्मस्थ, अज्ञानी, मोही जो लिखते हैं वह मानना असत्य है। क्षपणासार, लब्धिसार सब पढ़े, व्रत, नियम, पूजा, पाठ सब करे परन्तु 'मैं' को जाने बिना मोक्ष नहीं होता। थोड़ा पुण्य अवश्य मिलेगा जिससे राजा, महाराजा, देव आदि बन जायेंगे। आतंकवादी अपने आप को श्रेष्ठ मानते हैं, स्वयं को छोड़कर सबको दुष्ट, पापी, दुर्जन मानते हैं। वैज्ञानिक लोग धर्म को नहीं मानते तो भी सभी जीवों की रक्षा करते हैं। शुद्धात्मा का ज्ञान न होने से विकृतियाँ रहती हैं। गणधर द्वारा रचित हो उसे सूत्र कहते हैं। साधु की क्रिया गृहस्थ करे तो वह भ्रष्ट है, गृहस्थ साधु की क्रियाएँ खेल-खेल में भी करे तो वह भ्रष्ट है। गृहस्थ के कोई भी काम साधु नहीं कर सकते। जो मुनि निर्भय रहकर उत्कृष्ट चारित्र धारण करे, उपवास करे परन्तु स्वच्छंद प्रवृत्ति करते हैं आगम की आज्ञा का उल्लंघन करके मनचाही प्रवृत्ति करते हैं वे पाप को प्राप्त होते हैं मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। परन्तु जो व्यक्ति आगम को जानता है, मानता है एवं आचरण करता है वही व्यक्ति सम्यक्दृष्टि है। साधु आगम चक्षु हैं। सूई को धागे से बाँधकर कही भी डाल दे तो उसे आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। उसी प्रकार मैं को जानता हुआ शास्त्रों को जानने वाला व्यक्ति संसार से तिर जाता है। आध्यात्म से आत्मविश्वास बढ़ता है, आचरण सम्यक् होता है। दया करना दयादत्ती अभयदान है, करना चाहिए परन्तु आध्यात्मिक विकास में ज्ञान दान मुख्य है। आत्म कल्याण को छोड़कर धर्म भी अधर्म है। आत्मा के लिए जो क्रियाएँ की जाये वह सब धर्म है। जिस पुण्य के धन से गलत (हिंसा) कार्य करे उससे अच्छा पाप, (गरीबी) जिससे सम्यक्दर्शन व धर्म में आत्म कल्याण में यह जीव लगे। गुरुदेव ने बताया कि आत्म कल्याण तीन लोक में श्रेष्ठ है। साधु अंतरंग व बाह्य सभी विकारों से रहित होते हैं। जीवन भर भूखा रहना सरल है पर समता में रहना कठिन है। समता में रहना आत्मा में स्थिर रहना है। सब धार्मिक क्रियाएँ समता में रहने के कारण बनी हैं। शिष्य में सजल श्रद्धा व प्रखर प्रज्ञा होना आवश्यक है। ज्ञान का विकास होने पर इच्छाएँ सीमित हो जाती हैं। हमारे गुरुदेव

विरले अद्वितीय है। सामान्य लोग समझ नहीं पाते। जो आत्मा के लिए सतत श्रम करे वह श्रमण यानि साधु है। किसी व्यक्ति का पुत्र खो जाता है तो वह टी.वी. में अखबार में हर व्यक्ति से उसके पुत्र के बारे में पूछता है ठीक उसी तरह हमें हमारी आत्मा के बारे में भी शोध-बोध करना चाहिए जब तक हम इसे प्राप्त न कर लें।

गुरुदेव ने बताया कि आगम ज्ञान से रहित प्रशंसा करना अविवेक से, धृष्टता से प्रशंसा करना दोष है निंदा है। परन्तु आत्म गुणों की, भगवान् के गुणों की, गुणी के छोटे से गुण की प्रशंसा करना आवश्यक है यही आरती, पूजा, गुणानुवाद है। प्रशंसनीय कार्य करने वालों की अनुमोदना व प्रोत्साहन से पुण्य भी लगता है तथा यह गुण अधिक विकसित होता है। गुरु दोष को दूर करने के लिए कठोर वचन भी कहे तो भव्य जीव खिल जाते हैं, विकसित हो जाते हैं। जिस प्रकार पक्षी को उड़ना सिखाना नहीं पड़ता, मछली को तैरना सिखाना नहीं पड़ता ठीक उसी प्रकार निंदा न करना यह उपदेश देने की आवश्यकता नहीं यह स्वाभाविक, नैतिक गुण होना चाहिए परन्तु वर्तमान में हर चर्चा का विषय निंदा है। निंदा करने से मनुष्य के पीठ का कच्चा माँस खाने का पाप लगता है।

आचार्यश्री कनकनन्दी ने पुर्नवास कॉलोनी की धर्मसभा में बताया कि अपने व दूसरे के दोष निवारण का उपाय सम्यक्दर्शन के आठ अंगों को मानना तथा सुज्ञान द्वारा निंदा से बचना चाहिए। परनिंदा से नीच गोत्र का आस्रव होता है। दूसरों की निंदा से स्वयं भी निंदा के पात्र बनते हैं। दूसरे के दोष कहने वाला जिनधर्मी नहीं हो सकता। निंदा से मिथ्यात्व कर्म का बंध होता है। वह आत्म विकास नहीं कर पाता। निंदा से स्वयं की आत्मा का पतन होता है आत्महत्या तो शरीर की होती है परन्तु वास्तव में आत्महत्या दूसरों की निंदा करना या दोष प्रकट करना है। निंदा मानसिक महामारी है, संक्रामक रोग है। मुनिश्री सुविज्ञसागर जी ने भी धर्मसभा को संबोधित किया और बताया कि आहार दान में चारों दान गर्भित है। सुबह से आहारदान तक सबसे अधिक (घंटों तक) भावों में विशुद्धि रहती है। आहारदान औषधि है जिसके फलस्वरूप साधु तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि तप स्व-कल्याण तथा ज्ञान दान देना पर कल्याण भी करते हैं। ध्यान इधर-उधर भटकता नहीं। पूरे ध्यान से आहार बनाने की एकाग्रता रहती है। निर्लोभता, समता, विनय भक्ति आदि सात गुण प्रकट होते हैं। नवधा भक्ति, पडगाहन, उच्चासन, पादप्रक्षालन, पूजन, नमस्कार, मन शुद्धि, वचन

शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है। इस नवधा भक्ति से अनंत कर्मों की निर्जरा होती है। किसी कल्याणको में या और धार्मिक क्रियाओं, दान आदि में पंचाश्रय नहीं होते हैं। केवल आहारदान में ही पंच आश्रय रत्न वृष्टि, पुष्प वृष्टि, गंधोदक वृष्टि, दुन्दुभी-बाजे, जय हो जय हो जय जयकार होती है।

गुरुदेव ने बताया कि संसार में शुद्र स्वार्थी प्राणी अनंत है। स्वार्थ में ही रात-दिन रहते हैं। परार्थ, परोपकार उदार पुरुष ही कर सकते हैं। तृष्णा रूपी बड़बानल कभी तृप्त नहीं होती है। जितनी पूरी करो बढ़ती ही जाती है। इसके लिए हृदय परिवर्तन करना पड़ता है, संवेदनशीलता चाहिए, संतोष व समता से महापुरुष इसे (तृष्णा) वश करते हैं। शिक्षा, दीक्षा व प्रायश्चित्त द्वारा गुरु-शिष्य का विकास करते हैं। आध्यात्मिक वैभव सबसे बड़ा वैभव है। आध्यात्म समाज, राजनीति, कानून, विज्ञान सबसे परे है। हर व्यक्ति को अपने अधिकार क्षेत्र में ही बोलना चाहिए। दया के बिना केवल बुद्धि से व्यक्ति का विकास संभव नहीं है। पार्श्वनाथ ने नाग-नागीन को, जीवधर ने कुत्ते को, बुद्ध ने हंस को, नेमीनाथ ने पशुओं को बचाया। महावीर ने चंदनबाला आदि जीवों का उपकार किया। (महापुरुष ही करते हैं)। क्योंकि वे दया, करुणा, परोपकार, समता से भरपूर रहते हैं।

शिष्य की गलती होने पर दंडित न करने पर गुरु दंड के पात्र होते हैं।

गुरुदेव ने बताया कि गुरुओं को प्रणाम करने से उच्च गोत्र, दान से उत्तमोत्तम भोगों, उपासना से स्वयं की पूजा, भक्ति से कामदेव सदृश्य लावण्य-सुंदर शरीर की प्राप्ति, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती हैं। गुरु एक आदर्श दर्पण हैं। अरहंत सिद्ध की प्रतिमूर्ति हैं। रेत से दर्पण बनता है, परन्तु रेत में मुँह दिखाई नहीं देता। रेत को तपाकर शुद्ध प्रक्रिया के बाद दर्पण बनता है ठीक उसी प्रकार साधु स्वाध्याय तप रूपी अग्नि में तपकर सही-गलत का ज्ञान स्वयं करते हैं तथा भव्यों को भी इसका परिज्ञान कराते हैं। जिस प्रकार एक चुंबक से हजारों चुंबक बना देते हैं परन्तु लोहा चुंबक नहीं बना सकता चाहे वह कितनी भी अधिक मात्रा में हो। इसी प्रकार योग्य गुरु करोड़ों शिष्यों को मोक्षमार्ग बताकर भगवान् बनने की योग्यता प्रदान करते हैं। गुरु मध्य दीपक होते हैं। जिस प्रकार देहली पर रखा दीपक बाहर अंदर सब ओर प्रकाश देता है ठीक उसी प्रकार गुरु का ज्ञान व्यापक, गहरा, दिग्दर्शक होता है। सम्यक्ज्ञान से ही सम्यक्दर्शन दृढ़ होता है वह सम्यक्चारित्र निर्मल होता है। धर्म आचरण में आता

है। गुरु का उपदेश अधिक प्रभावी, कार्यकारी होता है क्योंकि वह स्वयं आचरण में लाते हैं, सभी के कल्याण के भाव, मन में दया, करुणा, निस्पृहता, निःस्वार्थता, निर्लोभता, निकषायता रहती है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी जी ने बताया कि सबको हमेशा खुश रहना चाहिए। खुश रहने से हम अच्छा सोच सकते हैं, बेहतर अनुभव करते हैं, कार्य अच्छा होता है। अच्छा महसूस करते हैं शरीर के सभी अंगो पेट, लीवर, आमाशय में सक्रियता रहती है। रक्त संचार सही होता है। अतः हमेशा खुश रहना चाहिए।

गुरुदेव ने कहा कि बच्चों को तोते की तरह पिंजरे में बंद रखने से उसका चहुँओर विकास नहीं होता है। प्रकृति के स्वच्छंद वातावरण में, मिट्टी के साथ, शरीर के अंगों में स्फूर्तिदायक खेल आदि से बच्चों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास अच्छा होता है। वर्तमान में मानव अपटू-डेट तो दिखता है परन्तु अंदर से बहुत खोखला व मानसिक तनाव से ग्रस्त है। डिग्रियाँ बहुत प्राप्त कर लेता है परन्तु स्वयं को (मैं को) नहीं जान पाता है, समझ पाता है। इसके लिए सच्चे गुरु की शरण में जाकर आत्मा का परिज्ञान आगम द्वारा करना चाहिए।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा कि संकीर्णता, स्वार्थ, दबाव व सीमित दायरे में रहने से व्यक्ति का विकास नहीं होता है। स्व-शक्ति, स्व-योग्यता का सदुपयोग नहीं होता है। जीव के संकीर्ण स्वार्थ तेरा-मेरा से आत्म शक्ति होते हुए भी विकास नहीं हो पाता। जैसे योग्य बीज को बंजर भूमि में डालने पर फलता-फूलता नहीं है या बीज को फ्रीज में रखने पर भी विकसित नहीं होता है। योग्यता के संवर्धन, विस्तार के लिए आंतरिक व बाह्य सब योग्यता की आवश्यकता है। सब जीव सुखी हो, सबके दुःख को अपना दुःख मानना व उसके दुःख दूर करने का प्रयत्न करना प्राथमिक धार्मिकता है। उदार व निःस्वार्थ भाव से आत्म शक्ति बढ़ती है। मुमुक्षु वह है जो मोक्ष चाहता है। तीर्थकर के समोशरण में अरहंत रहते हैं। पर तीर्थकर की उपस्थिति में अरहंत उपदेश नहीं देते हैं। अच्छे भाव करना कठिन कार्य है। गुरुदेव मिथ्यादृष्टियों व पापियों से अधिक शिक्षा लेते हैं। हमारे आगम में अधिकांश वर्णन पापियों का ही है कि उनका उद्धार कैसे हुआ और किस कर्म के फलस्वरूप उन्हें अधिक कष्ट भोगने पड़े।

तीर्थयात्रा, पूजा, विधान, आरती “एकतरफा मार्ग” की तरह है। प्रतीक तीर्थ

है। अचेतन तीर्थ है। जबकि साधु की सेवा, वैयावृत्य, आहारदान-जीवन्त-धर्म हैं। धर्म का स्वरूप सुख है। यदि साधु या हमारे घर का सदस्य बीमार है उसकी सेवा-सुश्रुषा के कारण हम मंदिर भी न जा पाये, पूजा-अभिषेक न भी कर पाये तो हमें दोष नहीं लगेगा क्योंकि यह जीवन्त धर्म है। घर का सदस्य तो कराह रहा है उसको आपकी आवश्यकता है और हम मदद न कर पाये तो हमारा धर्म क्या काम का?

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि हम स्वयं ही हमारी आत्मा के उत्थान व पतन के कारण है। स्वधर्म, स्व-आत्मा, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सरलता, वात्सल्यता, दया, परोपकार, सभी के कल्याण की भावना आदि से ही आत्मा का उत्थान होता है। राग-द्वेष, कषायों, घृणा, ईर्ष्या, अहंकार, कटुता, स्वार्थता, संकीर्णता, बदले की भावना आदि से आत्मा का पतन होता है।

गुरुदेव ने बताया कि मेरा अस्तित्व है तभी सब देव-शास्त्र-गुरु सबका अस्तित्व है। बीज के न होने पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का कोई महत्व ही नहीं है। भावरूपी बीज न डालने से पूजा का फल-फूल नहीं मिलता है। अतः धार्मिक क्रिया में भावों की निर्मलता आवश्यक है।

गुरुदेव ने बताया कि स्तवन का अर्थ गुणों से अधिक बखान करना है। भगवान् या गुरु को देखकर गद्गद् होकर स्वभाव व हृदय से निकलने वाले उद्गार स्तुति है। मानतुंगाचार्य ने भगवान् के गुणों का बखान स्वयं ने रचा जो वर्तमान में भक्तामर स्तोत्र हैं। पवित्र भावों से भक्तामर की रचना से जेल में बंद मानतुंगाचार्य के शरीर पर डाली गई बेड़िया व जेल के सभी ताले टूट गये। यह सब हृदय के उद्गार से निर्मित भक्तामर स्तोत्र का ही महात्म्य है। इसी प्रकार समंतभद्र आचार्य ने भी स्वयंभू स्तोत्र की रचना से लिंग में ही चंद्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा के दर्शन करवाये।

भोगभूमि में राग-द्वेष मंद रहता है, सप्त व्यसन नहीं रहता, कषाये कम रहती हैं, कल्पवृक्षों से प्रदत्त शुद्ध शाकाहारी भोजन करते हैं परन्तु यह शुभोपयोग व धार्मिकता नहीं है। यह केवल नैतिकता है। इसी प्रकार यहाँ पर भी केवल उपरोक्त क्रियाएँ धार्मिकता नहीं है यह केवल नैतिकता है। भोगभूमि के जीव केवल सात्विक, भद्र व सरल होते हैं परन्तु केवल इससे मोक्ष नहीं प्राप्त होगा। मोक्ष इससे आगे है। पुण्य बढ़ने पर अशुभ भाव कम होगा। धर्म अनंत की यात्रा है। कूपमंडुकता व

नेरोनेस से आगे धर्म के मर्म को जानने से ही हमारी आत्मा का विकास होगा। पुंडरीक का अर्थ कमल है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर कमल कितना दूर रहता है परन्तु खिल जाता है विकसित होता है। ठीक उसी प्रकार भव्य जीव सच्चे गुरु के पास जाकर अपने आप को धन्य मानते हैं, लाभान्वित होते हैं, गुरु का उपकार मानते हैं। गुरुभक्ति से मुक्ति मिलती है तो संसारी सुख तो उसके आगे तुच्छ है स्वयंमेव प्राप्त होते हैं इसके लिए भिखारी बनने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि निदान से फल कम हो जाता है। पूजा-विधान, आहारदान, भक्ति, जप सब करना जरूरी है परन्तु लक्ष्य भाव विशुद्धि व मोक्ष प्राप्ति का होना चाहिए। भाव सीमित लक्ष्य (निदान करने) से फल कम हो जाता है। हर धार्मिक क्रिया में स्व-कल्याण “मैं” अर्थात् आत्म तत्त्व की उपलब्धि का लक्ष्य होना चाहिए। यह सातिशय पुण्य है। बिना प्रसिद्धि की इच्छा से स्वयंमेव कीर्ति चारों दिशाओं में फैलती है। पशु गति से जीव चारों गतियों को प्राप्त कर सकता है। परन्तु चक्रवर्ती भोग-भोगते हुए, निदान बंध से नरक में पहुँचते हैं। लार्ड मैकाले ने भारतीयों को गुलाम की शिक्षा दी। अतः वर्तमान की शिक्षा पद्धति लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति कही जाती है। “साविद्या या विमुक्तये” विद्या से ही मुक्ति मिलती है तो क्या रोजगार नहीं मिलेगा? अवश्य मिलेगा। विदेश में 1500 योग कक्षाएँ जो 193 देशों में चल रही हैं। क्षुद्र विचार से ही पतन होता है। लक्ष्य महान् होना चाहिए।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि जो आत्मा के हित के लिए किया जाता है वह धर्म है। इस संसार में विचित्र कर्म है अतः भाव भी विचित्र होते हैं अतः जीव भी भिन्न-भिन्न हैं। कर्मों के अनुसार सुख-दुःख व भिन्न-भिन्न पर्यायें प्राप्त होती हैं। यह जीव अनादिकाल के संस्कार के कारण अहंकार व ममकार में ही लीन रहता है। अज्ञानी व ज्ञानी एक-दूसरे को विपरीत मानते हैं। गलत को गलत ही मानना चाहिए। गलत की सहमति व अनुमोदना नहीं करना चाहिए इससे द्वेष व घृणा भी नहीं करना चाहिए, साम्य भाव ही रखना चाहिए। द्रव्य, क्षेत्र, भाव तीनों योग्य होने पर योग्य गुरु से सम्यक्दर्शन प्राप्त होता है जिससे मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है। कर्मवर्गणाएँ हमेशा आती रहती हैं शुभ भाव से पुण्यास्रव व अशुभ भाव से पापरूप में परिणित हो जाती हैं।

गुरुदेव ने बताया कि छोटे देव, बड़े देवों के वाहन रूप पशु-पक्षी बनते हैं।

यह सब मिथ्यादृष्टि है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है। हम स्वयं अरहंत, सिद्ध रूप हैं, हममें भी आपकी तरह गुणों की प्राप्ति हो हम शुद्ध बन सके ऐसा श्रद्धान देव के माध्यम से जिनदर्शन से निजदर्शन करना है यही निश्चय सम्यक्दर्शन है। देव, जिन प्रतिमा प्रतीक, संकेत। मार्गदर्शक नक्षा व कम्पास शास्त्र है। इस मोक्षमार्ग का आचरण करने वाले गुरु है जो नौका में बैठते हैं व इसे गतिशील करते हैं। भगवान् ने अनंत ज्ञान प्राप्त किया है वह कैसे? यह शास्त्रों में लिखा है परन्तु इसको समझना आसान नहीं है। इन गूढ़ रहस्यों को गुरु के द्वारा समझकर स्वयं में जोड़ना चाहिए। हम जो धार्मिक क्रिया कर रहे हैं वह धर्म के लिए, गुरु के लिए, भगवान् के लिए कर रहे हैं यह समझना मिथ्यादृष्टि ही है। हम भी देव-शास्त्र-गुरु स्वयं बने इसके लिए धर्म या दर्शन करते हैं। जिस प्रकार नौका को देखने से पार नहीं हो सकते उसमें बैठने पर ही दूसरे किनारे पहुँच सकते हैं। धन की दो ही गतियाँ हैं दान व भोग। भोगों में लगाने से नष्ट हो जाता है परन्तु दान से अनंत गुना फल प्राप्त होता है। बीज को खा लेने से नष्ट हो जाता है परन्तु योग्य भूमि में डालने पर बड़ा विशाल वृक्ष बनता है। कुकर्म व कुविचार ही आत्महत्या है। शुद्ध भाव महालक्ष्य है। मुख्य उद्देश्य आत्म कल्याण का होना चाहिए। धन के प्रति आसक्ति त्यागने से सुख प्राप्त होता है। महत्वाकांक्षा उच्च रखनी चाहिए। आहारदान से तीन भूवन के स्वामी बन सकते हैं। छोटे-मोटे सुख तो स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। विशुद्ध भावों से ब्रह्माण्ड में जो परमाणु है जो ब्रह्माण्डीय ऊर्जा है वह हमारी आत्मा की ओर आकर्षित होती है। आत्मा का विकास शुद्ध भावों से ही होता है। अंधकार मारने-पीटने से नहीं बल्कि छोटे से भी दीपक से दूर होगा। इसी प्रकार स्वाध्याय रूपी दीपक जलाना आवश्यक है। हमारे अंतरंग में प्रसिद्धि प्राप्ति की अंश मात्र भी इच्छा नहीं रखनी चाहिए। स्वयंमेव प्राप्त हो तो इसमें विरोध भी नहीं करना चाहिए। तीर्थंकर कुछ भी नहीं चाहते परन्तु सौधर्म इन्द्र समोशरण की रचना करता है, पूजा स्तुति करता है, भगवान् के बैठने के लिए स्वर्ण-कमल बनाता है परन्तु भगवान् स्वर्ण-कमल से भी 4 अंगुल ऊपर अधर में रहते हैं। किसी को भक्ति-पूजा के लिए रोकते नहीं हैं क्योंकि प्रशंसा करने वाला भी पुण्य कमाता है। गुणी गुणों में वृद्धि भी करता है। अहंकार राग-द्वेष-कषाये न होने पर स्वयंमेव गुण प्रकट होते हैं जिस प्रकार ऋतु आने पर फल स्वतः ही आ जाते हैं। अरहंत सिद्ध बनना हमारा अधिकार है। गुठली को बोने पर अनेक फल आते हैं।



आम खा लेने से नष्ट कर देने से नहीं। गुठली को वृक्ष बनने के लिए गुठली को फाड़कर बहार निकलना पड़ता है उसी प्रकार आत्म विकास के लिए बुरे भावों से ऊपर उठना पड़ेगा।

गौरव का अर्थ है गुणों से भारी मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं पुण्यशाली हूँ ऐसा सोचना व गुणों में वृद्धि करनी चाहिए। पाप कार्य में नवकोटि से भी समर्थन नहीं करना चाहिए। शुभ कार्यों में धर्म कार्यों में गुणी को गुण समूह की कथा करनी ही चाहिए। भगवान् को देखकर मन प्रसन्न होना चाहिए। गद्गद् होना चाहिए, वाणी से हित-मित-प्रिय वचन से गुणानुवाद करना चाहिए। काय से झुककर नमस्कार करना चाहिए। हमारा रोम-रोम पुलकित होना चाहिए।

चक्रवर्ती को पुण्य से नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं-काल, महाकाल, पांडु, माणक, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगला, मालारत्न।

**रत्न**-उत्कृष्टतम उपलब्धि को रत्न कहते हैं।

**सात चेतन रत्न**-पवनजय घोड़ा, विजयागिरी हाथी, भद्रमुख गृहपति, कामवृष्टि, अयोद्ध सेनापति, सुभद्रा पत्नी, बुद्धि समुद्र पुरोहित।

**अचेतन रत्न**-चक्र रत्न, दण्ड रत्न, छत्र रत्न, तलवार रत्न, कांकणी रत्न, चिंतामणि रत्न और चर्म रत्न। 96 हजार रानियाँ, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी इतना सारा वैभव होने के बाद भी चक्रवर्ती जब इसे त्यागकर दीक्षा लेते हैं तब भगवान् बनते हैं।

पुण्य की शक्ति को संकुचित करते हैं पाप।

आंतरिक विकास गुणों से होता है।

**दान**-सत्पात्र को दान देने से उत्तम कुल, सुंदर रूप, अच्छे लक्षण, शुभ मति, धार्मिक सदाचार की शिक्षा, सुशील और अनेक भेद वाले चारित्र को प्राप्त होता है। पीत, पद्म, शुक्ल इन शुभ लेश्या को, शुभ नामकर्म, साता वेदनीय का प्राप्त होना सत्पात्र को दिये गये दान का ही फल है। पवित्र भाव ही शुभ लेश्या है।

**पापनुबंधी पुण्य**-पाप से कमाया हुआ धन जिससे स्वयं का नाश व दूसरों का भी नाश होता है।

**वर्गणाएँ 23** होती हैं इसमें कर्मण वर्गणा एक है।

**सूर्य किरण फोटोन** है जो अनंतानंत परमाणुओं का पिंड है।

कर्मवर्गणाएँ अच्छे भावों से पुण्य रूप व बुरे भावों से पाप रूप में परिवर्तित होती हैं। हमारे जैसे भाव होंगे हमारे पूरे शरीर के आत्मप्रदेशों में परिस्पदन होगा। भाव बीज के समान है। भाव से ही भविष्य सुधरेगा। हमारे आंतरिक स्वरूप के कारण ही धर्म होता है। इन्द्र आहार नहीं दे सकते, सेवा आहारदान पुण्यशाली ही कर सकते हैं।

साधु ही जीवन्त धर्म है-धर्म का स्वरूप साधु ही है साधु ही पंचपरमेष्ठी, नव देवता, दश धर्म, रत्नत्रय व तीर्थयात्रा है। साधु ही बच्चा भगवान् है क्योंकि उसका विकसित रूप ही अरहंत सिद्ध है। साधु बीज रूप है उसकी वैयावृत्य, सेवा पौधे के जड़ में पानी देने के जैसा है। धर्म का मूल साधु है। जिस प्रकार शक्कर में मिठास, आग में अग्नि है उसी प्रकार धर्म हमारे शरीर के संपूर्ण भाग में है। श्रमण क्रम विकास करके मोक्ष प्राप्त करता है। धर्म के आयतन तीर्थ स्थान भी साधु के कारण ही बनते हैं। धर्म का मुख्य आयतन साधु है क्योंकि वे इन्द्रिय व कषायों को अधीन करते हैं। चैत्य का अर्थ चेतना अर्थात् यथार्थ चैत्य साधु है। साधु का शरीर चैत्यालय है क्योंकि उसमें भगवान् रूप आत्मा निवास करती है। आयतन का अर्थ फील्ड या अधिकार क्षेत्र। चैत्य भगवान् का अरहंत रूप अनंत चतुष्टय शुद्ध रूप है उसकी प्रतिमूर्ति भगवान् है। यह मूर्ति जहाँ स्थापित है वह चैत्यालय है।

गुरुदेव ने बताया कि पंचपरमेष्ठी का ध्यान श्रावक के लिए प्राथमिक आवश्यक है। परन्तु साधु के लिए स्व-स्वरूप में का ध्यान, सतत चिंतन, मनन आवश्यक है। संसारी जीवों का स्वरूप मिट्टी-गोबर आदि से युक्त अविकसित बीज की तरह है बल्कि साधु का स्वरूप पके हुए अनाज की तरह है। साधु अपने को भगवान् नहीं माने तो वह साधु नहीं है। श्रावक मंद रूप से व साधु तीव्र रूप से विकास करते हैं। बीज के गुणधर्म के अनुसार विकास होता है ठीक उसी प्रकार आत्मा के स्वरूप का विकास अंदर का राग बिना ज्ञान के आधार पर होता है। साधु विश्व का महाप्रभु है। दूसरों को दिखाने के लिए ढोंग, आडम्बर, प्रदर्शन धर्म नहीं है, धर्म आत्म स्वभाव है। आत्मा का शुद्ध स्वभाव जो किसी मनुष्य के द्वारा नहीं बनाया गया अतः प्राकृतिक है। षट् द्रव्य प्राकृतिक है इसमें से हम जीव द्रव्य है अतः हम भी प्राकृतिक हैं।

णमोकार मंत्र को उल्टा, बीच से किसी भी रूप में बोल सकते हैं। ऐसा बोलने में मन एकाग्र होगा तो कर्म निर्जरा अधिक होगी। णमो लोए सव्व साहुणम् इसमें णमो

लोए सव्व यह अंत दीपक है। इसको सबके साथ जोड़ना चाहिए। णमो लोए सव्व अरिहंताणम् णमो लोए सव्व सिद्धाणम् णमो लोए सव्व आयरीयाणम् णमो लोए सव्व उवज्जायाणम् इस प्रकार लोक के सभी अरहंतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं की वंदना हो जाती है। उल्टा बोलना भी सही ही है क्योंकि साधु ही उपाध्याय, आचार्य, अरहंत, सिद्ध इस प्रकार विकास करके बनते हैं। इसकी समीक्षा गुरुदेव ने धवला ग्रंथ के आधार पर की है।

वर्तमान में णमोकार में वर्णित 3 आचार्य, उपाध्याय, साधु उपस्थित है और वही अरहंत, सिद्ध बनने वाले है यही जीवन्त धर्म है। वहीं हमें आगम को समझा सकते है। वही धर्म को आचरण में लाकर अरहंत-सिद्ध का पहले स्वरूप कैसा था उसका दिग्दर्शन हमें कराते है व वह स्वयं दृढ़ संकल्पित है।

णमोकार मंत्र में पाँचों परमेष्ठियों को बराबर बताया गया है। रत्नत्रय सब में समान है। अरहंत सिद्ध घी रूप में है तो आचार्य, उपाध्याय, साधु दूध-मक्खन रूप में है। इन तीनों की सुरक्षा छोटे शिशु की तरह करनी चाहिए जिस प्रकार शिशु ही प्रौढ़ बनता है उसी प्रकार साधु ही अरहंत सिद्ध बनते है। आचार्य, उपाध्याय, साधु ही भगवान् बनने के लिए दृढ़ संकल्पित है। उन्हें कष्ट सहना पड़ता है। बहुत बार तो महापुरुषों को, साधुओं को मारा, पिटा, तिरस्कृत, उपेक्षित किया जाता है जैसे महावीर, पार्श्वनाथ, बुद्ध, ईसा-मसीह, महात्मा गाँधी आदि। आचार्य, उपाध्याय, साधु अवस्था में ही आहार, विहार, सुरक्षा की आवश्यकता है भगवान् बनने पर कुछ नहीं। साधु साधन अवस्था व सिद्ध साध्य अवस्था है। साधु को समता में रहना आवश्यक है जिस प्रकार एल.के.जी. के बच्चों को अधिक मेहनत करनी पड़ती है। अन्नदाता किसान को, सैनिक को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए तन-मन-धन देना पड़ता है उसी प्रकार भगवान् बनने के लिए साधु को समता-संयम, नियम, व्रत से कष्ट सहना पड़ता है। अतः शास्त्र व गुरु की बच्चे की तरह संभाल करनी चाहिए।

महात्मा गाँधी ने गाली देने पर सोचा गाली ही दी है मुझे मारा तो नहीं, मारने पर सोचा केवल मारा ही है अंग तो नहीं काटे, काटने पर सोचा मेरा सिर तो नहीं काटा सिर काटने पर सोचा मेरे धर्म को मेरी आत्मा को तो कोई नहीं मार सकता।

संपत्ति को श्रेष्ठ मानने से पतन होता है। सिद्धों के स्वरूप को अरहंत ही बताते है, दिग्दर्शन कराते हैं। पंचम काल में गुरु यह मार्ग दिखाते हैं।

हमें सनम सत्यग्राही बनना चाहिए। एक पक्ष में मोह, अज्ञानता से भटकना नहीं चाहिए।

गुरुदेव ने बताया कि सभी को अभिवादन में जय जिनेन्द्र प्रणाम, नमस्कार, विनयपूर्वक हाथ जोड़कर हृदय को लगाकर करना चाहिए। हार्ट, हेड, हेन्ड, हृदय, सिर, हाथ से ऊर्जा का रोटेशन शरीर में होता है। जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है उनकी भी जय तथा सबको जिनेन्द्र भगवान् की तरह मानना अतः सबकी जय हो ऐसे भाव होने चाहिए। बड़ों के तथा पूज्य, गुणी व्यक्तियों के चरण अवश्य छूना चाहिए जिससे उनके चरण व हाथ के आशीर्वाद से विशेष ऊर्जा मिलती है। अभिवादन में हाथ, बाय, गुडमॉर्निंग आदि अर्थहीन व दुःख सूचक शब्द नहीं बोलने चाहिए।

**विनय**-गुरुदेव ने बताया कि विनय जैन धर्म में एक प्राथमिक क्रियाविधि है। विनय धर्म की वर्णमाला पढ़ने के पूर्व की क्रिया है। वाचनिक विनय का धर्म में महत्वपूर्ण स्थान है। वचन विनय का माध्यम है सत्याणुव्रत, सत्यधर्म, वचनगुप्ति, भाषा समिति, विनय तप। विनय को मोक्ष का द्वार कहा गया है। मोक्ष विनय लोकोत्तर विनय पाँच प्रकार का है। दर्शन विनय, तप विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, उपचार विनय। विनय से गुणों में वृद्धि व भावों में विशुद्धि होती है। विद्या ददाति विनयं विद्या से ही विनय प्राप्त होता है। जो हमें योग्यता, पात्रता प्रदान करे वही विद्या है।

**विनय पंचपरमेष्ठी** का त्यागी, संयमी, गुणी, जो विशुद्धि में अधिक हो, जो ज्ञान में अधिक हो उनकी करनी चाहिए। विनय करने से मान-कषाय कम होती है। गुणी के गुण हमें प्राप्त होते हैं। विनय करने वालों का अभ्युत्थान होता है अर्थात् चारों ओर से आयु, यश, बल, सुख में वृद्धि होती है। जितना विनय बढ़ेगा उतने हमारे गुण बढ़ेंगे। विनय से परंपरा से मोक्ष मिलता है। अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ होने पर तथा मिथ्यात्व के कारण विनय नहीं कर पाते हैं। श्रद्धा-प्रज्ञा से विनय है वह सार्थक है। लौकिक विनय धन, स्वार्थ के लिए, काम, भोग, भय, प्रसिद्धि के लिए किया गया विनय महापाप का कारण है। आत्मविशुद्धि के लिए नम्रतापूर्वक की गई क्रिया विनय है। पूजा, आरती, वंदना, तीर्थयात्रा विनय का छोटा रूप है। रत्नत्रय से युक्त साधु का विनय बार-बार करना चाहिए जिससे मान-कषाय कम होती है सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। गुरुजनों का बहुमान अर्थात् गुणों से भी अधिक प्रशंसा

करनी चाहिए। जो मान से रहित हो, संसार से विरक्त हो, निरालसी हो, सरल, अनुग्रह करने का इच्छुक, दूसरों के गुण प्रकट करने में तत्पर और संघ का प्रेमी होता है वह विनय करता है।

देव-शास्त्र-गुरु के अवर्णवाद से 70 कोड़ा-कोड़ी सागर कर्मबंध हो जाता है। दर्शन मोहनीय कर्मबंध भी इसी से होता है। यह महापाप है। देव-शास्त्र-गुरु के सामने संसारी लोगों का सम्मान भी कर्मबंध का कारण है। रत्नत्रय से युक्त साधु स्वयं प्रगति करते हैं तथा उन्हें देखकर अन्य भी प्रगति करते हैं। गुणस्थान के अनुसार विनय होता है। देव-शास्त्र-गुरु, अन्य किसी की भी निंदा करनी नहीं चाहिए, सुननी भी नहीं चाहिए व अनुमोदना भी नहीं करनी चाहिए। मन-वचन-काय से किसी भी प्रकार बुरा सोचना भी नहीं चाहिए। साधु की हँसी उड़ाने से श्रीपाल व उसके 700 मित्र कोढ़ी हो गये। अंजना ने पूर्वभव में प्रतिमा को 22 मिनट छुपाया तो उसे 22 वर्ष का पति वियोग सहना पड़ा। उसी प्रकार सीता, द्रौपदी, धृतराष्ट्र, पाण्डव, सुकुमाल मुनि, सुकौशल मुनि आदि को अनेक कष्ट सहने पड़े।

साइंस ऑफ एनेलाईज (वीतराग विज्ञान) आत्म सुख चाहने वाले प्रसिद्धि, ख्याति, सत्ता, संपत्ति से कोई नाता नहीं रखते। प्रसिद्धि चाहने से किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। सत्ता-संपत्ति की प्रसिद्धि चाहने वाले सम्यग्दृष्टि भी पहले गुणस्थान मिथ्यात्व में चले जाते हैं। प्रशंसनीय अच्छा कार्य सदैव करते रहना चाहिए परन्तु मुझे प्रसिद्धि मिले, लाभ मिले उस उद्देश्य से नहीं करना चाहिए। 14 कारणों से व्यक्ति विनयी नहीं होता है।

गृहस्थ क्या योग्य क्या अयोग्य यह नहीं जानते। उनमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निंदा, आलस्य कूट-कूटकर भरा रहता है। इस कारण से सत्य भी असत्य हो जाता है। उन्हें आगम का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता केवल संकीर्ण पूजा-पाठ स्तोत्र पाठ को ही पूर्ण धर्म समझ लेते हैं जबकि यह धार्मिक क्रियाएँ धर्म के लिए केवल पानी के लिए बर्तन के बराबर हैं यह केवल नैतिकता है पूर्ण धर्म नहीं है। कर्मों ने हमको पराभूत (परास्त) कर दिया है। हमें हित-अहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है। हमारा ज्ञान चिंतन-मनन, ध्यान, अनुभव रहित रसविहीन ज्ञान है।

4 ज्ञान के धारी मुनि अपने आप को अल्पज्ञ मानते हैं। आचार्यश्री कनकनन्दी स्वयं को सर्वज्ञ की स्कूल का छोटा-सा विद्यार्थी मानते हैं परन्तु

हम अज्ञानी अपने आप को पूर्ण ज्ञानी मानते हैं। मुझे सब कुछ आता है ऐसा समझते हैं। केवलज्ञान से पूर्व किसी भी आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंडित का ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकता तो फिर हम स्वयं को कितना धोखे में रखते हैं।

स्वाभिमान का अर्थ आत्मा का संपूर्ण रूप से मैनेजमेंट करना शोध-बोध करना है।

ज्ञान विनय 8 प्रकार का होता है। योग्य समय पर हाथ-पैर धोकर, नियमपूर्वक, बहुमानपूर्वक, गुरु नामपूर्वक, ग्रंथ के बारे में वर्णन कर अंतरंग विशुद्धिपूर्वक की गई क्रिया ज्ञान विनय है। उसका उद्देश्य स्व को जानना स्व को पहचानना है।

इन्द्रों के पास भी मनुष्य जितना बड़ा मस्तिष्क नहीं है। हम निंदा, ईर्ष्या, घृणा, असत्य आदि भावों से इसका दुरुपयोग कर रहे हैं।

गुरुदेव ने बताया कि अच्छे गुणों का विकास करना चाहिए। हमारे विचार हमेशा सकारात्मक होने चाहिए। व्यक्ति के पास अच्छे विचार व अच्छे कार्य के लिए समय नहीं रहता परन्तु निंदा के लिए समय न हो तो भी घंटों चर्चा करते रहते हैं। कोई घटना जैसे एक्सीडेंट हो तो लोग न बुलाने पर भी भीड़ जमा हो जाती है जबकि अच्छे कार्य प्रवचन, पूजा, भक्ति आदि में गिनती के लोग ही आते हैं। क्योंकि अनादिकालीन मिथ्यात्व के संस्कार हैं अतः बुरे कार्य, पापात्मक कार्य में ही मन लगता है। जीव को इसकी आदत पड़ी हुई है। अतः धर्म कार्य में मन लगाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

आत्म स्वभाव को आत्म छवि कहते हैं। उत्तम भाव-व्यवहार से आत्म छवि बनती है। मनुष्य के शरीर में दो ग्रंथियाँ रहती हैं हीन ग्रंथी व अहं ग्रंथी जिसके कारण अहंकार होता है। स्वयं में दीनता भाव होने के कारण व्यक्ति दूसरे की प्रशंसा सुन नहीं पाते। स्वयं के दीनता भाव, कमजोर समझना, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ ऐसे नकारात्मक विचार से व्यक्ति का पतन होता है। वह जीवन में कुछ नहीं कर सकता। स्वयं भले अयोग्य हो परन्तु हमारा लक्ष्य महान् भगवान् बनने का होना चाहिए जिससे हम अवश्य भगवान् बनेंगे। कनकनन्दी गुरुदेव बताते हैं जो व्यक्ति जैसा सोचता है वह वैसा अवश्य प्राप्त कर सकता है। ह्वील पॉवर मजबूत होना चाहिए।

गुरु का स्वरूप-वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने पुनर्वास कॉलोनी की धर्मसथा में गुरु के सच्चे स्वरूप का बखान किया। आचार्यश्री ने बताया कि सच्चे

गुरु व्यक्ति का निर्माण करते हैं। गुरु के गुणों की प्राप्ति की भावना से व्यक्ति गुणी बनता है। गुरु दीपक की तरह होते हैं। गुरु निर्माता अर्थात् कर्ता है क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है। आत्म रसिक गुरु से आत्मा को परमात्मा बनने का रसपान करने आते हैं क्योंकि जिसके पास ज्ञान होता है वही ज्ञान बाँट सकता है। आत्मा में अनंत वैभव है उसका ज्ञान गुरु ही कराते हैं। आत्म ज्ञान से रहित सभी दीन-हीन हैं। आत्म सुख का अनुभव भी गुरु के द्वारा ही कर सकते हैं। गुरु आत्म ज्योति स्वरूप होते हैं। तीर्थंकरों को भी सम्यग्दर्शन गुरु से ही होता है। जिस प्रकार मछली को पानी के बिना स्वर्ण फर्श पर घबराहट होती है उसी प्रकार आत्मज्ञानी को संसार में आत्मज्ञान के बिना घबराहट होती है।

जिस प्रकार चाकू के घर्षण करने पर धार पैनी होती है, आग लगाने के लिए माचिस पर घर्षण करना पड़ता है ठीक उसी तरह आत्मा रूपी बर्तन को चमकाने के लिए बार-बार आत्मज्ञान रूपी राख से माँजने पर चमक आती है। उपाध्याय शिक्षा गुरु गुणी, सूत्र अर्थ विशारद, सूत्र का परिज्ञान कराने वाले, अभ्युत्थान चारों ओर का ज्ञान कराने वाले, आत्म उपलब्धि कराने वाले होते हैं।

सर्वज्ञ जीनियस होते हैं। छद्मस्थ में गणधर श्रेष्ठ होते हैं अन्य सभी अल्पज्ञ हैं। आइंस्टीन ने जब रविन्द्रनाथ टैगोर से आत्मज्ञान के बारे में सुना तो कहा कि मैंने भौतिक उपलब्धि तो बहुत की परन्तु स्वयं की, मैं की उपलब्धि नहीं की इसके लिए मुझे भारत में जन्म लेना है।

जानकारी लेकर या स्टकर कोई ज्ञानी नहीं होता है। अनुभव से ही महान् ज्ञानी बन सकते हैं। श्रुतज्ञान को प्रगट करना चाहिए। जिस प्रकार 100 चोटों में पत्थर टूटता है परन्तु पहली चोट से टूटने की प्रक्रिया चालू हो जाती है। इसी प्रकार हमें हमारी आत्मा को निर्मल बनाते रहना चाहिए जब तक हम सर्वज्ञ नहीं बने हममें कमियाँ अवश्य रहेंगी।

अल्पज्ञान, खंडित ज्ञान अहितकारी होगा। यही विपरीत ज्ञान हमारे नाश का कारण होगा। हित को अहित, पूर्ण को अपूर्ण, अपूर्ण को पूर्ण अज्ञानी मानते हैं। विशाल ज्ञान हो परन्तु स्वयं को व दूसरों को भी हानि पहुँचाये वह अहितकारी है।

विवेक सहित ज्ञान सुज्ञान है। जिस ज्ञान से मुक्ति मिले वह पूर्ण ज्ञान है। क्रमबद्ध, समन्वयात्मक ज्ञान, सम्यक्ज्ञान विवेक सहित आत्मज्ञान श्रेष्ठ है। इसके लिए

स्वाध्याय, मनन, चिंतनपूर्वक ज्ञान संकीर्णता व पूर्वाग्रह को छोड़कर होना चाहिए।

वर्तमान पंचम काल में चतुर्थ काल की अपेक्षा 1000 गुना अधिक फल मिलेगा। सुज्ञान में भक्ति से, सेवा से, श्रद्धा से, नवकोटि से सतत विकास करता रहेगा वह श्रेष्ठ है। जिस प्रकार साइकिल चलती है तो नहीं गिरते हैं परन्तु रोकने पर गिर जाते हैं इसी प्रकार विकास को रोकने पर आत्मा का पतन हो जायेगा। अहं एक्को मैं एक हूँ। खलु शुद्ध-सिद्ध ही शुद्ध है परन्तु निश्चयनय से सब प्राणी शुद्ध है भगवान् है। जिस प्रकार साइकिल के पहिये में धूरी (एक्सल) बिना पहिया नहीं रह सकता उसी प्रकार आत्मा के बिना पूजा, पाठ, दान, पुण्य, नम्रता, केशलौच सब क्रियाएँ व्यर्थ हैं। क्योंकि यह आत्म उपलब्धि में केवल सहायक है।

साधु की आहारचर्या भ्रामरी वृत्ति या गोचरी होती है। जिस प्रकार भँवरा फूलों का संपूर्ण रस चूस नहीं लेता, गायें घास को जड़ से उखाड़कर नहीं खाती उसी प्रकार साधु आहार में थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करते हैं।

तप, उपवास के माध्यम से आत्मा को जानकर हममें शांति व समता आती है। गुरुदेव ने बताया कि हमें अनुभव करना चाहिए कि हमारी आत्मा का ज्ञान श्रेष्ठ है। तन-मन इन्द्रियों सहित मेरी आत्मा नहीं है। इससे परे शुद्ध स्वरूप आत्मा है। मैं क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित हूँ। दूसरों के पुण्य की अनुमोदना कर स्वयं पुण्य कमाना चाहिए। बदलाव की तरफ पहला कदम जागृत होता है। दूसरा कदम स्वीकार करना। अधर्म का विनाश चाहना अधर्मी का नहीं। आत्मा-मनातीत अर्थात् मन से रहित है। इन्द्रिय शरीर मन सब उपकरण है। इसे मैं अर्थात् आत्मा नहीं मानना चाहिए। गुरुदेव कहते हैं विश्वास से धर्म होता है प्रलोभन से नहीं। बहिरंग में आगम का अभ्यास तथा अंतरंग में स्व-संवेदन ज्ञान होना सम्यक्ज्ञान है। स्वयं का अनुभव गोल्डन गाँठ दो छोर होने पर लगती है ठीक उसी तरह अंतरंग में स्व-संवेदन ज्ञान व बहिरंग में संयम, तप, आगम ज्ञान से आत्मा को परमात्मा बना सकते हैं। ज्ञान से, तप से, संयम से संयुक्त होना आर्य संयुक्त होना है। 1000 महाव्रतियों से 1 आगम ज्ञाता श्रेष्ठ, 1000 आगम ज्ञाताओं से 1 आत्मज्ञानी श्रेष्ठ है।  $1000 \times 1000 = 10,00,000$  दस लाख गुना श्रेष्ठ है।

आत्मा को जाने बिना संयम, तप, आगमज्ञानी होने पर भी साधु श्रमण नहीं श्रमणाभास है अर्थात् श्रमण होने का भ्रम है। धर्म स्वयं से प्रारंभ होता है स्वयं से



गुजरता हुआ स्वयं के माध्यम से स्वयं को प्राप्त करता है।

स्वाध्याय से तन-मन स्वस्थ रहता है। परमागम का 5 मिनट भी स्वाध्याय करने पर हमें समता व शांति प्राप्त होती है। स्वाध्याय से मन एकाग्र होता है। हमारे आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। आत्मविशुद्धि बढ़ती है। स्वाध्याय में गहन विषयों का परिज्ञान होता है जिससे पापकर्म क्षीण होते हैं। माँसपेशियों में खिंचाव कम होता है, हार्टबीट में वृद्धि नहीं होती है। यानि ब्लडप्रेसर हाई व लो नहीं होता है। आगम को आँखों के द्वारा, ब्रेन व चेतना द्वारा आत्मा तक पहुँचाया जाता है।

लाखों-करोड़ों मील दूर रहने पर सूर्य को सभी देखते हैं परन्तु मेघाच्छादन होने पर उसे नहीं देख पाते ठीक उसी तरह पास में पड़ी हुई बड़ी वस्तु भी आँखें बंद होने पर नहीं देख पाते हैं उसी प्रकार आत्मज्ञान बिना आगम ज्ञान मिथ्याज्ञान है। सब प्रकार का भौतिक ज्ञान होने के बाद भी संसार में अधिकतर जीव स्वयं को प्राप्त नहीं कर पाते। क्योंकि मोह से आवृत्त जीव आत्मा को नहीं जान पाता।

कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि विश्वास से धर्म होता है प्रलोभन से नहीं। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा से अज्ञानी, अधम, पापी जीव भी भगवान् बन जाता है। सच्ची श्रद्धा से सम्यक्ज्ञानी व चारित्रवान् बनकर मोक्ष चला जाता है। सर्वप्रथम नैतिक बनकर सच्चा धार्मिक बनना आवश्यक है। धर्म एकांत में जंगल में होता है। भीड़ हो वहाँ सब सद्गुण बह जाते हैं। तीर्थ क्षेत्र सभी एकांत में, पहाड़ों में, जंगलों में ही है जिससे सिद्ध होता है कि हमारे सभी तीर्थंकर, महापुरुष आत्म उपलब्धि के लिए एकांत में रहे। परन्तु वर्तमान में क्राउड साइकोलॉजी है। लोग वही जाना पसंद करते हैं जहाँ भीड़ इकट्ठी होती है चाहे धर्म हो या न हो। आत्मा का ज्ञान एकांत में होता है न की भीड़ में।

**धर्म भाव प्रधान है**—हमारी आत्मा पर मोह, अज्ञान, स्वार्थ रूपी प्लास्टिक से लेमीनेशन किया गया है जिससे आत्मा तक सत्य, समता, शांति का संदेश नहीं पहुँचता है। केवल पंच पाप नहीं करना, रात्रि भोजन नहीं करना, सप्त व्यसन नहीं करना ही धर्म नहीं है। क्योंकि भोगभूमि में ये सब पाप नहीं होते, करोड़ों वर्ष भूखे भी रहते हैं। आयु भी 1 पल्य से 3 पल्य अर्थात् असंख्यात वर्ष है परन्तु आत्मज्ञान से रहित होने पर सभी भोगभूमि के जीव श्रेष्ठ ऊँचे स्वर्गों में नहीं जाते, मनुष्य नहीं बनते।

आध्यात्मिक ज्ञान से अनुपम शांति मिलती है। आत्मा को छोड़कर सब बाह्य

है। आत्मज्ञान बिना यह जीव अनादि काल से संसार में जन्म-मरण असहनीय दुःख भोगता रहता है। इसी कारण निरतिशय पुण्य, पापनुबंधी पुण्य ही बाँधता है। धर्म आत्मज्ञान से सहित ऑक्सीजन है। संसार की जो भौतिक क्रियाएँ हैं वह भोजन है। नैतिक क्रियाएँ पानी हैं और आध्यात्म ज्ञान आत्मज्ञान ही ऑक्सीजन है। जिस प्रकार ऑक्सीजन बिना यह जीव जीवित नहीं रह सकता ठीक उसी प्रकार आत्मज्ञान बिना कोई भी क्रिया धर्म नहीं है।

बाह्य क्रियाओं के अलावा भी मोक्ष हो सकता है परन्तु अंतर में आत्मविशुद्धि आवश्यक है। जैसे बाहुबलि, भरत आदि आहार, केशलौच आदि न करने पर भी आत्म संविती से मोक्ष पधारे। परम समाधि में भेदज्ञान सहित मोक्ष होता है। आध्यात्म परम सत्य है यह राजनीति, कानून सबसे परे है। धर्म एकाग्रता से करने पर अधिक फलदायी होता है जैसे सूर्य किरणें फैलने से ताप कम देती है परन्तु लेंस से अग्नि उत्पन्न कर देती है ठीक उसी प्रकार पवित्र भाव से धर्म करने पर ग्रंथियों में अमृत स्राव होता है। धर्म को आत्मा से जोड़ने पर विशेष शांति व सुख मिलता है। जिस प्रकार टॉर्च बहार की ओर करने पर बहार प्रकाश देती है एक पोईंट पर डालने पर केन्द्र में सही प्रकाश होता है। ठीक उसी प्रकार धर्म आत्मा के केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रित होना चाहिए।

जिस प्रकार भूख लगने पर हम भोजन की प्रतिक्रिया स्वतः ही बिना सिखाये करते हैं ठीक इसी तरह मोक्ष प्राप्ति हेतु आत्मानुभव करना चाहिए। जिस प्रकार बच्चे के जन्म के बाद माँ को स्वतः ही पालन-पोषण का ज्ञान होता है ठीक उसी प्रकार आत्मानुभव है।

आर्तध्यान, निकृष्ट, निष्काम कर्मभाव आत्मा की परिणति है निदान से पुण्य क्षीण हो जाता है। निदान किंपाक फल की तरह मीठा जहर है। जो ऊपर से सुंदर दिखता है खाने में मीठा होता है परन्तु मृत्यु देने वाला है। आधुनिक दिखावा भी मीठा जहर है। इससे हार्टअटैक, डायबिटीज जैसे भयंकर रोग होते हैं।

आत्मा की अनंत शक्ति आत्मा की अच्छी भावना से जागृत होती है। कोई भी कार्य अत्यधिक धीरे-धीरे भी नहीं करना चाहिए व अत्यधिक जल्दी-जल्दी भी नहीं करना चाहिए। दिमाग में संतुलन की तरह कार्य में भी संतुलन बनाना चाहिए। कोई भी कार्य करने से पहले इसकी रूपरेखा, चित्र दिमाग में बना लेना चाहिए जिससे

न्योरोन्स एक्टिव होते हैं। परहित से बुद्धि सक्रिय होती है।

स्वजाति परम हिंसक है मनुष्य, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से घृणा, द्वेष, ईर्ष्या करते हैं। नारी दूसरी नारी की दुश्मन है। इसकी प्रसिद्धि, ख्याति, मान, सम्मान कुछ भी देख नहीं सकती। पुरुष की अपेक्षा नारी में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा अधिक होती है वह पुरुष को भी उस ओर प्रेरित करती है। पुरुष भी नारी का बहुत अनादर करते हैं, चुटकुले, व्यंग, शायरियों में अधिकतर नारी का अपमान होता है परन्तु नारी इसको समझती नहीं है अच्छा समझती है। यह नारी के प्रति ओछापन, दुर्व्यवहार है। अभी भी इतने आधुनिक युग में जहाँ एक ओर तो कहते हैं पुरुष-नारी समान है बल्कि पुरुष से भी आगे है परन्तु कहते कुछ ओर है व्यवहार कुछ ओर है। आचार्य कनकनन्दी जी के माध्यम से ही मैं समझ पायी कि नारी को चुटकुलों, व्यंगों में कितना गिरा दिया गया है। एक गुरु ही है जो स्त्री, पुरुष, बच्चों, बूढ़ों सबका उत्थान चाहते हैं।

साधु की अलौकिक वृत्ति होती है। भाषा में हम जिन शब्दों का दुरुपयोग व गलत अर्थ लेते हैं उनका आगम में बिलकुल विपरीत शुद्ध सही अर्थ है। जैसे निकम्मा शब्द का लोक व्यवहार में आलसी काम रहित अर्थ होता है परन्तु आगम में यह भगवान् के लिए निकम्मा अर्थात् कर्म रहित अर्थ है। वैसे ही पगले शब्द का अर्थ पापों का गालन करने वाले। श्रमिक का अर्थ जो आत्मा के लिए श्रम करे, पुरुषार्थ का अर्थ पुरुष यानि आत्मा जो आत्मा के लिए श्रम करे कार्य करे। शासन का अर्थ जो आत्मा पर इन्द्रियों पर शासन करे यह आत्मानुशासन है।

**अपवाद**—कम करना, हीन करना, दूषित करना, न्यून करना।

**श्रमण**—जो आत्मा के लिए श्रम करे।

**अध्यवसाय**—जो कार्य करते हैं, श्रम करते हैं।

**आत्मा**—अभिन्न षट् कारक है। जिस प्रकार राम ने फ्रिज में पानी रखा वह आधा घंटा में बर्फ बना इसमें छः कारक, कर्ता, कर्म, संप्रदान, अधिकरण, उपादान... होते हैं वही छः कारक पानी शब्द में जोड़ना यह अभिन्न षट् कारक है।

आत्मानुशासन मूल है जो यह नहीं करते हैं वह पदच्युत, भावच्युत, भाषाच्युत होते हैं।

**प्रदूषण**—प्रकृष्ट दोष इसमें भाव प्रदूषण मुख्य है। कषाय से युक्त जो आत्मा को कष्ट दे वह कषायी है। सामान्य जन हिंसा करने वाले को ही कषायी मानते हैं।

ज्ञानी साधु को देखकर विनय नहीं करने से चारित्र भ्रष्ट हो जाते हैं। यदि साधु भी समता, शांति से च्युत हो जाये, क्रोध, मान, माया, लोभ से आत्मा को मलीन कर दे तो वह चारित्र भ्रष्ट है। श्रमणों का अनादर करने वाला चारित्र भ्रष्ट है।

केवल मारने के भाव ही नहीं मन में क्रोध, मान, माया, लोभ उत्पन्न होना भी भाव हिंसा है। गलती से गलत कार्य होने के बाद भी पश्चाताप अवश्य होना चाहिए जिससे पाप हल्का हो जाता है। **प्रायश्चित्त का अर्थ**—चित्त का शोधन करना प्रायश्चित्त है। पाप की अनुमोदना पाप है। आत्म दोषों की निंदा करनी चाहिए। स्वयं के दोष-गुण देखने चाहिए। दूसरों को नहीं, दूसरों के केवल गुण ही देखने चाहिए। गुरुदेव कहते हैं जो सही को नहीं जानता वह गलत को भी नहीं जानता।

धर्म सूक्ष्म मनोविज्ञान है। गलती को अच्छा मानना तीव्र कषाय बंध का कारण है। दिल दुःखाना ही पाप नहीं ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निंदा इससे भी अधिक बड़ा पाप है।

गुरुदेव ने बताया कि न धर्मों धार्मिकैर्विना धार्मिक व्यक्तियों के बिना धर्म नहीं रह सकता। धर्म अंतरात्मा से की जाने वाली क्रिया है। जिस प्रकार टी.वी., पंखा, बल्ब सभी हैं परन्तु इलेक्ट्रीसिटी दिखती भी नहीं है ठीक उसी तरह आत्मा दिखती नहीं, भाव दिखते नहीं हैं परन्तु भावों से सच्चे मन से क्रिया की जाती है वही सच्ची पूजा है। जो अधिक ज्ञानी होगा वह क्षमा, विनय, संतोष, दया, समता आदि से युक्त होगा। अतः जो इन सब गुणों से युक्त है वह निंदा नहीं कर सकता। धार्मिक गुणग्राही होगा दोषों को नहीं देखना यही सच्ची धार्मिकता है।

आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्म नियंत्रण करके यह जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है यह उद्गार आचार्य कनकनन्दी ने पुनर्वास कॉलोनी में प्रकट किये। मोक्ष में पहुँचाने वाला पंथ ही धर्म है। धर्म अनुष्ठान द्वारा अपनी आत्मा में रमण करना यह मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी है। मोक्षमार्ग का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से होता है। आचार्य, उपाध्याय, साधु रत्नत्रय का पालन करते हुए दश धर्म, 12 तप, 5 महाव्रत, 5 समिति, नग्न रहना, केशलौच करना, एक बार आहार, खड़े रहकर आहार, भूमि शयन, कम सोना आदि 28 मूलगुणों का पालन समता में रहने व आत्म ध्यान करने के लिए करते हैं। इस प्रकार एक रूप होकर एकाग्र श्रमण पराविद्या, परमविद्या, आत्मविद्या, वीतराग-विज्ञान को प्राप्त करते हैं। गुरुदेव बताते हैं केवल कृष्ण के मुँह में ही ब्रह्माण्ड नहीं था, विश्व के हर प्राणी के मुँह में ब्रह्माण्ड है। इसको आगम, अनुभव, ध्यान, एकाग्र

होकर जानने की आवश्यकता है।

‘तीर्थकर की वाणी सप्तभंगी का अर्थ अनंत विकल्पों में’-पुरुष का अर्थ आत्मा है। पुरु का अर्थ उदार गुण युक्त, श्रेष्ठ गुण युक्त। गुरुदेव बताते हैं कि कार्ल मार्क्स का साम्यवाद इसके आगे बड़ा नहीं है कि स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, नारकी सब पुरुष है यानि आत्मा है। अग्नि को मिटाने पर केवल अग्नि की उष्णता ही मिटती है। इसी प्रकार शरीर मिटने पर शरीर ही मिटता है आत्मा नहीं।

हम थोड़ा धर्म करने पर विचार करते हैं हम धार्मिक हैं परन्तु गुरुदेव बताते हैं 12 गुणस्थान के अंतिम समय तक मोक्ष जाने के पहले-पहले हर जीव परम शुद्ध धार्मिक नहीं। 13वें 14वें गुणस्थान में जीव पूर्ण धार्मिक बनता है।

बुद्धि से आगे भावना अनुभव से धर्म होता है। भाव में कलुषता से युक्त होकर उपवास, दान, पूजा, भक्ति सब व्यर्थ है। गुरुदेव बताते हैं कि लोग अनावश्यक पाप अधिक करते हैं। आवश्यक पाप कम करते हैं। भावना भक्ति न होने पर भी समता होनी चाहिए ईर्ष्या नहीं।

जिस प्रकार दर्पण के सामने काले, गोरे, नाटे, लंबे सब तरह के लोग खड़े रहते हैं। वह किसी से राग, द्वेष, प्रेम, आसक्ति नहीं रखता है हमें भी ठीक उसी तरह बनना है।

शलाखा पुरुष माँसाहारी, सप्त व्यसनी नहीं होते।

औदारिक शरीर मनुष्य का क्षुधा से युक्त, पेट से युक्त, कवलाहार से युक्त साधु ही मोक्ष जाते हैं। खोटा भाव ही पाप है। भाव में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा सब पतन के कारण हैं।

गुरुदेव बताते हैं कि हमारे अंदर भावात्मक स्टेपलाईजर की आवश्यकता है। जिस प्रकार स्टेपलाईजर इलेक्ट्रीक पॉवर अधिक होने पर व कम होने पर बैलेंस बनाये रखता है ठीक उसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष में भावात्मक स्टेपलाईजर से समता रहती है।

कोई भी कार्य करे उसकी दिशा निर्धारित करनी चाहिए नकारात्मक सोच नहीं रखनी चाहिए। हमेशा पॉजेटिव रहना चाहिए। सुख-दुःख, अमीरी-गरीबी, लाभ-हानि जीवन में धूप-छाया की तरह आती रहती है। इसे कर्म का उदय मानकर प्रभावित नहीं होना चाहिए। किसी से भी अपेक्षा, उपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। अपेक्षा-उपेक्षा से

रहित जीवन ही सुखी जीवन है। स्वयं को नियंत्रित करने की आवश्यकता है किसी से अपेक्षा करेंगे कि वह मेरा यह कार्य कर दे और वह व्यक्ति कार्य न करेगा तो संक्लेश होगा अतः गुरुदेव कहते हैं अपेक्षा, उपेक्षा से रहित बनो।

जो चोट सहता है उसका सम्मान होता है जैसे घड़ा। दूसरों को मारने वाले का विनाश जैसे आत्महत्या, आत्महत्या नहीं यह शरीर की हत्या है। संक्लेश भावों से कषायों से आत्महत्या, आत्म पतन होता है।

पढ़ाई हो या कोई कार्य उसे लगातार नहीं करना चाहिए बीच में आराम भी आवश्यक है। न्यूट्रॉन दूसरे न्यूट्रॉन से जुड़ा रहता है। लगातार पढ़ने से तंत्रिका तंत्र को विश्राम नहीं मिलता। कार्य के बाद विश्राम आवश्यक है।

सफलता जिस कारण से मिली हो उसको धन्य समझना चाहिए। अपने को धन्य मानना चाहिए। अपने गुणों को या अच्छे कार्य को बार-बार याद करना चाहिए। दूसरे के गुणों को भी बार-बार याद करना चाहिए। किसी भी कार्य में छोटी विजय बड़ी विजय की ओर ले जाती है। नजरियों का परिवर्तन करने से उद्देश्य प्राप्त होता है। दूसरा अंक आपका इंतजार करेगा। संकट की स्थिति में कुँजी आप ही है।

भाव भावी भाग्य का निर्माण करते हैं। अच्छे भावों से पुण्य बंध व बुरे भावों से पापबंध, नीच गति का बंध होता है। जैसे यशोधर ने आटे का कृत्रिम मुर्गा बनाकर हत्या की तो भी अनेक भवों तक कष्ट भोगना पड़ा। रावण ने भी भावों से सीता को पत्नी बनाना चाहा वास्तव में तो वह सीता को छूआ भी न था। अंजन चोर णमोकर मंत्र न जानता था पर श्रद्धा से, अच्छे भावों से विद्या सिद्ध कर लेता है जबकि सेठ णमोकार व धर्म को जानते हुए भी विद्या सिद्ध न कर सका।

गुरुदेव बताते हैं जैसे धर्म नहीं होता बल्कि अधर्म होता है। धन बढ़ने के साथ अहंकार, अधर्म, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन दिखावा बढ़ जाता है। धर्म के लिए इन सबसे दूर रहकर सत्य, समता, शांति से साधना करनी पड़ती है अतः तीर्थंकर के पास जो संपदा होती है वह तीन लोक में किसी के पास नहीं हो सकती परन्तु वह संपूर्ण वैभव को छोड़कर त्यागकर दिगम्बरी दीक्षा लेते हैं तब उन्हें आत्म वैभव प्राप्त होता है।

आध्यात्मिक व्यक्तियों में अतीन्द्रिय ज्ञान होता है। आप सीखेंगे कि अति-इन्द्रिय अनुभूति से कैसे काम करायें। आप सीख जायेंगे कि आध्यात्मिक व्यक्ति

समय, स्थान के बंधन से छूटकर दूसरों को कैसे दिख सकता है। जीवन में व्यवहारिक सत्य सरल होते हैं। जितने हम सरल होंगे उतना काम अधिक होगा।

आत्म शक्तियों का संवर्धन, संरक्षण करके सदुपयोग, विकास करना चाहिए। जब तक सत्य, अक्षय पद प्राप्त न कर ले तब तक वृद्धि करते रहना चाहिए। शब्द से पदज्ञान, पदज्ञान से अर्थज्ञान, अर्थज्ञान से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से सर्वकल्याण, आत्मकल्याण होता है।

नग्न शरीर-द्रव्य लिंग, आंतरिक भावों में शुद्धि-भावलिंग।

कोई विषय समझ में न आये तो उसे श्रद्धा से समझने, सुनने से सम्यक्त्व होता है।

चतुर्थ काल में उत्तम संहनन होता था परन्तु वर्तमान में हीन संहनन है। हमारी हड्डियाँ शिशु की तरह कोमल, कमजोर, नाजुक है ऐसी स्थिति में भी साधु तपस्या करते हैं तो उनकी वर्तमान की एक दिन की तपस्या व उपवास चतुर्थ काल के 1000 वर्ष की तपस्या के बराबर है। धर्म पवित्रतर है जिसे अज्ञानियों ने अपवित्र बना दिया है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा कि धर्म से, निस्पृहता से, गुरुओं से जिनवाणी से व्यक्ति में विवेक बढ़ता है। विवेक पाप नष्ट करता है। विवेक से धर्म करने पर इसका फल विभूति व विस्तार को प्राप्त होता है। धर्म अखिल विश्व के सुख के लिए है। धर्म से रहित चक्रवर्ती भी पुण्यशाली नहीं होता है। पुण्य का अर्थ मेरिट व श्रेष्ठ है। ज्ञान आत्मा से प्रकट होता है। जिससे आत्मा पवित्र हो सुख व शांति मिले वह धर्म है। पुण्य की शक्ति को कोई बाधित नहीं कर सकता। पुण्य का फल ही मोक्ष है। नैःश्रेयस सुख मोक्ष का अंतिम फल है।

संपूर्ण धर्म, तप, संयम, पूजा-पाठ आत्मा के लिए है। किसी वस्तु को जानने-समझने के लिए विषय को कथा कहानी से जोड़ने पर अधिक याद रहता है। चौथे गुणस्थान से 13 गुणस्थान तक अंतरात्मा रहता है। 14 गुणस्थान में सिद्ध बनता है। भावों में पाप के कारण स्त्री 6 नरक में पुरुष 7वें नरक में परन्तु शेर केवल 5वें नरक जाता है जो माँसाहारी है। मन स्वच्छ व स्थिर एकाग्र होने पर आत्मध्यान होता है। ज्ञान, स्वच्छ ध्यान, चिंतन, मनन की संगति का असर व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। पूर्ण अपरिणत दशा 13 गुणस्थान में होती है। दूसरों के दुःख से संवेदनशील होना दया

है। सुसंगति से कर्मनिर्जरा, एकाग्रता, सरलता, सुख, शांति प्राप्त होती है। जिस प्रकार गर्मी मिलने से पानी गर्म व फ्रिज में जम जाता है। जिसके कारण भावों में सरलता, सहिष्णुता, समता बढ़े वह सुसंगति है। कुसंगति पाप को बढ़ाती है। कुगति का संचय करती है, कीर्ति रूपा स्त्री नष्ट होती है। धर्म का विध्वंस करती है। विपत्ति को विस्तृत करती है संपत्ति को नष्ट करती है, नीति और विनय का घात करती है क्रोध उत्पन्न करती है और शांति दूर करती है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि व्यवहार धर्म से निश्चय धर्म व निश्चय धर्म से व्यवहार धर्म जुड़ा रहता है। पूजा-पाठ, तीर्थयात्रा, रत्नत्रय का पालन, नग्न दिगम्बर मुद्रा, दश धर्म, सोलह भावना, पंच महाव्रत व अणुव्रत सब व्यवहार धर्म है परन्तु निश्चय धर्म आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए ही इन सबका पालन किया जाता है। रत्नत्रय से युक्त आत्मा ही तीर्थ है। जिससे तिरा जाय अर्थात् संसार समुद्र से पार हो सके वह तीर्थ है। जिसके द्वारा भव्य जीव संसार से तिरते हैं। इतिहास महापुरुषों को नहीं बनाता है, महापुरुषों के माध्यम से इतिहास बनता है। सांसारिक वस्तुओं में जिस प्रकार रत्न श्रेष्ठ है पारदर्शी है, कठोर है, किसी से कटता नहीं, बहुमूल्य है, चमकदार है, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता उसी प्रकार आत्मा के अनंतानंत गुणों में ये तीन रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, व सम्यक्चारित्र श्रेष्ठ है। हमारा आत्मा भी किसी के द्वारा काटा नहीं जा सकता, पारदर्शी है, कठोर भी है वज्र जैसा, मुलायम भी, हल्का भी, भारी भी, छोटा भी, बड़ा भी। आदि से अंत तक था व रहेगा, बहुमूल्य है क्योंकि तीन लोक की मानव व देवों की कुल संपदा भी इसके आगे तुच्छ है अतः अनंत वैभवशाली है। आत्मा की अनंत गाथा को गणधर भी नहीं जान पाये। आत्मा आकाश से भी विराट, व्यापक है। इसमें अनंत गुण व अनंत प्रतिच्छेद है। आत्मा का विस्तार तीन लोक प्रमाण हो सकता है व संकुचन सूई की नोक के अनंतवें भाग में भी समा सकता है। आत्मा का ज्ञान केवलज्ञान के बाद तीन लोक के समस्त जीवों व पर्यायों को 1 समय में एक साथ जान व देख सकता है। आत्मा के एक प्रदेश में अनंत गुण व एक गुण में अनंत शक्त्यांश होते हैं। एक शक्त्यांश में अनंत पर्याय होती है। आत्मा आकाश से भी अधिक इयत्तावान होता है। आत्मा सौ से सवासेर नहीं अनंत सेर है। जिस प्रकार मोबाईल में तरंगें कनवर्ट होकर अनंत शक्ति वाली हो जाती है उसी प्रकार आत्मा शुद्ध होने पर उसकी अनंत शक्ति



बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने पुनर्वास कॉलोनी की धर्मसभा में कहा कि स्वयं को आत्म संबोधन करो स्वयं के गुण व दोषों को जानो। अनर्थ चिंतन छोड़ो। विपरीत भावों से कर्मबंध होता है। अनंत बार हमने अनर्थ चिंतन किया है अतः इसकी गाँठ खोलने के लिए अनंत बार आत्म चिंतन करना पड़ेगा। गलत चिंतन बार-बार अधिक होता है तथा अधिक समय रहता है। अच्छा शुभ चिंतन कम ही होता है नहीं के बराबर होता है, अधिक समय नहीं रहता क्योंकि अनादिकालीन संस्कार बुरे चिंतन के पड़े हैं अतः वह उन्हें अधिक समय टिकने नहीं देते। खोटी व छोटी बातों का चिंतन नहीं करना चाहिए व सुनना भी नहीं चाहिए क्योंकि स्वात्माचिंतन ही उत्तम है। देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से स्वयं को जानना चाहिए। देव अर्थात् भगवान् मेरा भावी स्वरूप है। गुरु साधन रूप है व जिनवाणी मार्ग बताने वाली है। शास्त्र टिकिट व प्लेटफॉर्म है। भगवान् बनना यह लक्ष्य है। अपने आत्मा की रुचि निश्चय सम्यग्दर्शन है। बिना व्यवहार निश्चय धर्म नहीं होता। बोली में व्याकरण नहीं होती, व्याकरण सहित भाषा होती है। निश्चय धर्म साध्य है व व्यवहार धर्म साधन है। उपादान निश्चय धर्म है व्यवहार निमित्त है।

सुंदर मन होना आवश्यक है, तन सुंदर न हो तो भी सुंदर मन वाले अधिक लोगों को आकर्षित करते हैं। निरस मन न रखे। मन की सुंदरता हमारी बातचीत में झलकती है। असुंदर मन में मायाचारी अधिक रहती है, विनम्र होना सुंदर मन का प्रतीक है। उपादान-कार्य, साध्य, निश्चय है, निमित्त-कारण, साधन व व्यवहार है। भोजन बनाने हेतु अग्नि निमित्त है, गमन हेतु धर्म द्रव्य उठरने हेतु अधर्म द्रव्य।

वैज्ञानिक धर्माचार्य गुरुदेव ने पुनर्वास कॉलोनी की धर्मसभा में बताया कि जीव उद्धार यह श्रेष्ठ कला है। जीविकोपार्जन की 72 कलाएँ हैं यह सब सामान्य कलाएँ हैं आत्म उपलब्धि करना श्रेष्ठ कला है, परम कला है। साधु जीवन निर्माण के श्रेष्ठ कलाकार है। आध्यात्म आनंद में तृप्त होना परम कला है। आत्म रमण ही परम कला है। आध्यात्मिक रस से तृप्त है वह श्रेष्ठ कलाकार है। हमारे तीर्थंकर भी कलावंत कलागामी हैं। आध्यात्मिक में षट् कारक सब एक है, व्यवहार में अलग-अलग है। आत्मा को, आत्मा से, आत्मा के द्वारा, आत्मा के लिए ही प्राप्त करना है यह षट् कारक निश्चय से है। व्यवहार से मुनिधर्म, दसधर्म, पंचमहाव्रत, 28 मूलगुण सब

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए व्यवहार धर्म है। भगवान् का मूलरूप अहं है। भगवान् शब्द विशेषण ज्ञान सहित है। सिद्ध भी विशेषण है। जैन धर्म अनेकांत स्वरूप है यह भी विशेषण है।

अशुद्ध में शुद्ध रूप, अमूर्तिक में मूर्तिक को मिथ्यादृष्टि नहीं जानते हैं। तर्क मीमांसा, उदारवादी, वैचारिक क्रांति जो कुछ होता है स्वयं में ही होता है। यह अभिन्न षट् कारक है। स्वयं को अपनी आत्मा में स्थापना करने के लिए पूजा में स्थापना की जाती है। गलत काम करने का फल भी स्वयं को ही मिलता है, तब भी गलत कार्य करने में व्यक्ति हिचकिचाता नहीं है। पूजा जन्म-जरा-मृत्यु, संसार ताप काम-बाण, क्षुधा रोग, अज्ञान, अष्ट कर्म सब स्वयं के ही नाश करने के लिए की जाती है जिससे अंतिम मोक्षफल की प्राप्ति की कामना की जाती है। भगवान् के तो सब दुःख रोग-शोक मिट गये हैं। उन्हें कोई कष्ट नहीं, उनका तो मोक्ष भी हो गया है, हम स्वयं उसकी प्राप्ति के लिए पूजा करते हैं।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि भगवान् कृतकृत्य है अतः उनकी मुद्रा शांत हाथ पर हाथ रखकर होती है। उन्होंने संसार के राग-द्वेष, मोह-माया, काम-क्रोध आदि त्याग दिया है। यह मुद्रा यह शिक्षा देती है कि अनंत वैभव, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य प्राप्त करने के लिए सब विभावों को छोड़कर अनंत बार आत्म चिंतन करना पड़ेगा व अनंत बार आत्मा के बारे में जानना व चर्चा करनी पड़ेगी, आत्मा में लीन होना पड़ेगा। सभी संकल्प-विकल्प, अपेक्षा-उपेक्षा से रहित होना पड़ेगा। स्वयं के आत्मा में ज्ञान घनाकार रूप में भरा हुआ है। चार भुजाओं के समूह को परिधि कहते हैं। लंबाई x चौड़ाई को क्षेत्रफल तथा लंबाई x चौड़ाई x ऊँचाई को घनफल कहते हैं। हमारा ज्ञान परिधि या क्षेत्रफल की तरह है तथा सिद्ध भगवान् का ज्ञान घनफल है। घनाकार अर्थात् संपूर्ण रूप से ठसाठस भरा हुआ है। जो छद्मस्थ जीव है, उनको धर्म के फलस्वरूप ठोस ज्ञान प्राप्त होता है।

मैं हूँ तभी षट् कारक, सात तत्त्व, धर्म, देव-शास्त्र-गुरु सब है। हिन्दी में विभक्ति कारक के बिना भी शब्द प्रयोग होता है। समासांत में विभक्तियाँ नहीं लगती हैं। जो सांसारिक वैभव को ही सुख मानता है वह मोक्षमार्ग से भ्रष्ट है। आत्मा के ज्ञान होने पर चपलता छूटती है, परावलंबन छूटता है। मन, इन्द्रियाँ, शरीर, राग-द्वेष कषायें सब पर है केवल आत्मा ही मेरा है यह स्वात्माश्रितता आती है। आत्मा को भूलने के

कारण संसार है। आत्मा को भूलने के कारण ही संसार बढ़ता है। यह आत्म विस्मृति है। दर्पण में जैसा चेहरा होगा वैसा ही दिखेगा, वैसे ही जैसे भाव होंगे वैसे ही कर्मबंध होंगे।

मन अलग है, भाव अलग है। भाव आत्मा के होते हैं। मन-मनोवर्गणा, कर्मवर्गणा से बनता है। मन केवल संज्ञी जीव के ही रहता है। मन से ज्यादा भाव शब्द श्रेष्ठ व व्यापक है क्योंकि 1 इन्द्रिय से 4 इन्द्रिय तक सभी जीव मन रहित होते हैं परन्तु इन सबमें भाव रहते हैं। पेड़-पौधों के भी भाव होते हैं उन्हें पानी देने पर खुश रहते हैं। सुख-दुःख का भी अनुभव करते हैं, उनकी जड़े जिधर पानी होता है उधर बढ़ती है। असंज्ञी जीवों की अधिकता रहती है इसीलिए मनुष्य जन्म को समुद्र में फेंके गये बारीक रत्न की उपमा दी है जिस प्रकार समुद्र में बारीक रत्न मिलना मुश्किल होता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है उसमें भी उत्तम कुल, सभी अंगों की पूर्णता, आध्यात्म में रुचि, सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय, दिग्म्बरत्व यह तो उत्तरोत्तर अधिक दुर्लभ है। तीर्थंकर भी संसारी अवस्था में असंज्ञी पर्याय में अधिक काल तक रहे हैं। मन सहित ज्यादा समय संसार में नहीं रहता क्योंकि तीर्थंकर भी लाखों-करोड़ों वर्ष आत्म स्वरूप में स्थिर नहीं हो पाते, लीन नहीं हो पाते हैं। आत्मा ही मेरा स्वरूप है, मैं अरिहंत हूँ, सिद्ध हूँ। मैं भगवान् बन सकता हूँ यह आत्मविश्वास है। आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है। आत्मा ही शील है। जिस प्रकार दीपक प्रकाशन की क्रिया से सार्थनामा है उसी प्रकार चारित्र भी कर्मनाश क्रिया से सार्थनामा है। आजीवन नियम से युक्त जीवन ही यम है। शील भी आत्मा को छोड़कर कही नहीं है, जिन्होंने मोक्ष प्राप्त करके अनुभव किया है उन्होंने बताया है।

केवलज्ञान मोक्ष के लिए प्रमाण है केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद ही जीव मोक्ष जाता है। धर्म आकाश से भी महान् है। सिंधु बिंदुओं का समूह है परन्तु बिंदु ही सिंधु नहीं उसी प्रकार धर्म सिंधु है तथा पूजा, दान, विधान, उपवास, विनय सब बिंदु के समान हैं। इमली के बड़े पेड़ में एक पत्ती इमली के वृक्ष का छोटा-सा भाग है उसी प्रकार व्रत-उपवास-एकाशन करना आदि चारित्र का शुद्ध रूप से पालन ही धर्म है। आकाश को कोई नहीं नाप सकता, उसे केवलज्ञानी ही जान सकते हैं। जिसको निश्चय रूप से मोक्ष प्राप्त होने वाला है वह वृत्ति है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने पुनर्वास कॉलोनी की धर्मसभा में

कहा कि साधु स्व-आत्मा को प्राप्त करने की क्रियाएँ करते हैं अतः स्वार्थ क्रिया करते हैं। आत्मा की क्रिया अनंत ज्ञान, अनंत वैभव, अनंत वीर्य, अनंत दर्शन जैसे शब्द हैं जैसे ही भाव होना आध्यात्मिकपना है। आध्यात्मिक स्वार्थ ही यथार्थ है और कुछ नहीं। आध्यात्मिक अनंत को क्षुद्र पैमाने में नहीं नाप सकते हैं। कोई किसी का विभु, प्रभु, पति, पत्नी नहीं क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का हो ही नहीं सकता। हर जीव स्वयं का प्रभु, विभु, स्वामी है। हर जीव स्वतंत्र है उनकी अलग-अलग सत्ता है। पुरुष का अर्थ है आत्मा। जो आत्मा की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करे वह पुरुषार्थी है। धर्म सहित काम व अर्थ मोक्ष के कारण है। गृहस्थ के किसी भी कार्य से मोक्ष नहीं हो सकता, हर कार्य में पाप लगता ही है। उन पापों को कम करने के लिए आहारदान, पूजा, तीर्थयात्रा आदि कार्य होते हैं। आत्मा के लिए जो उद्यम करता है वह उद्योगपति है। धर्म टेढ़ा-मेढ़ा नहीं है। जिस प्रकार पानी जिस बर्तन में डालते हैं उसी प्रकार टेढ़ा-मेढ़ा, छोटा-बड़ा होता है उसी प्रकार धर्म। मानव दुष्ट प्राणी है जिसने धर्म को विकृत कर दिया है। देवगति के जीवों से लेकर महामच्छ तक सभी गति में नहीं जा सकते केवल मनुष्य गति से ही जीव चारों गतियों में जा सकता है। बुद्ध भगवान् के वैराग्य का मूल कारण पानी को लेकर पारिवारिक कलह था। दुःख का मूल कारण इच्छाएँ हैं। अक्षर ज्ञान के लिए अ से ज्ञ तक क्रम से पढ़ाया जाता है परन्तु पूर्ण अक्षर ज्ञान के बाद क्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार धर्म के प्रारंभ में क्रम आवश्यक है परन्तु अंतिम में सब एक रूप आत्मा में समाहित हो जाते हैं। एक कषाय का त्याग करने पर अन्य कषायें स्वतः ही नष्ट हो जायेगी। एक के रहने पर सभी रहेगी। आत्मा अखण्ड है अतः शरीर के किसी भी भाग में पीड़ा देने पर सबमें पीड़ा होती है। हर जीव में असंख्यात आत्मप्रदेश होते हैं। हर आत्मप्रदेश में अनंत गुण होते हैं। दस धर्म, रत्नत्रय, पंच महाव्रत, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य सभी इसमें समाहित हैं।

आगम का विषय याद न भी रहे व केवल श्रद्धा से सुनने पर भी एक दिन केवलज्ञान उत्पन्न कराने वाला है। संपूर्ण पृथ्वी की नदियों की रेत मिला के मध्यम संख्यात होती है।

एक अगरबत्ती को जलाने पर इसका धुआँ संपूर्ण कमरे में फैल जायेगा। छोटे-बड़े कमरे के अनुसार फैल जायेगा धुआँ का एक अंश भी अलग नहीं कर सकते ठीक उसी प्रकार हमारे आत्मा के प्रदेश हमारे शरीर के अनुसार छोटे-बड़े हो जाते हैं व

एक-मेक हो जाते हैं। यह आत्मा का संकोच-विस्तार गुण है। आत्मा हाथी के शरीर में जाता है तो आत्मप्रदेश उस रूप विस्तृत हो जाते हैं व निगोदिया सूक्ष्म जीव में जाने पर उस रूप संकुचित हो जाते हैं। प्रदेश की परिभाषा है कि एक शुद्ध परमाणु जितने आकाश प्रदेश को घेरता है उसको प्रदेश कहते हैं। हमारे पूरे लोकाकाश तीन लोक का जितना विस्तार है उतना हमारे आत्मप्रदेश का विस्तार है। रॉकेट का ईंधन अलग होता है। पोलर बीयर उत्तरीय भालू है। पोलर बीयर के बच्चे का वजन जन्म के समय 200 ग्राम होता है और वही बड़ा होकर 700 से 900 किलो का हो जाता है जो बच्चे में आत्मप्रदेश होते हैं बड़े होने पर भी वही रहते हैं केवल उनका विस्तार होता है। तृणभक्षी के बच्चे बड़े जन्मते हैं व माँसभक्षी के बच्चे छोटे जन्मते हैं।

छोटी मछली को बड़ी मछली व उसको भी उससे बड़ी मछली भक्षण करती है इसे मत्स्यन्याय कहते हैं।

समुद्घात के समय आत्मप्रदेश व कर्म परमाणु तीन लोक में फैल जाते हैं इसे लोकपूरण समुद्घात कहते हैं।

आत्मा का वैभव तीन लोक व तीन काल के समस्त देव व मानव के सुख से अनंत गुना है। इस स्व-वैभव को प्राप्त करने हेतु राग-द्वेष त्यागकर अकिंचन बनना होगा।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि एक गुण का अविभागी छोटा-सा भाग जो केवली भगवान् ही जान सकते हैं उसे शक्त्यांश कहते हैं। हमारी आत्मा के असंख्यात प्रदेश है, एक प्रदेश में अनंत गुण, एक गुण में अनंत शक्त्यांश, एक शक्त्यांश में अनंत पर्याय, अनंत पर्याय आकाश से भी अधिक ईयत्तावान होती है इसलिए उस ही शुद्धोपयोगी को निर्दोष निज परमात्मा को ही आराध्य-आराधक संबंध रूप भाव नमस्कार हो। इससे ही आत्मा की सिद्धि होती है। शुद्धोपयोग ही सर्वार्थ साधक है। शुद्ध सोने से बनने वाली मूर्तियाँ शुद्ध सोना रूप ही होती है अशुद्ध सोने से बनने वाली मूर्तियाँ अशुद्ध ही रहेगी। जीव की शुद्धतम अवस्था ही सिद्ध भगवान् है। जिस प्रकार शरीर को सुंदर बनाने के लिए ब्यूटीपॉलर, न्यायवान् बनने के लिए न्यायालय इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करके स्व-आत्मा को जानने का विश्वविद्यालय कनकनन्दी गुरुदेव के पास है। स्वाध्याय के द्वारा स्व-चिकित्सा आध्यात्मिक दवाई से होती है, जो भव रोग को मिटाती है। हमारे संपूर्ण मनोरथ आत्म उपलब्धि है। शुद्ध

भाव ही मुख्य धर्म है, इसी से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा जीव को शुद्ध-बुद्ध, आनंद की प्राप्ति होती है। स्व-शुद्धात्मा का विश्वास ही आत्मविश्वास है। स्वधर्म व्यक्ति निष्ठ, निज धर्म है व सुधर्म व्यक्ति निष्ठ भी हो सकता है व समूह धर्म भी हो सकता है।

जीव की शुद्ध दशा ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र है। 4थे गुणस्थान से शुद्ध बनने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है तथा 13-14 गुणस्थान में यह पूर्ण होती है। मेरे आत्मा में अरहंत सिद्ध बनने की शक्ति है, निश्चयनय से मैं शुद्ध हूँ यह सम्यग्दर्शन है। इसका आगम व गुरु से ज्ञान प्राप्त करना सम्यग्ज्ञान है व उसे अपने जीवन में उतारना भावों को पवित्र बनाना यह सम्यक्चारित्र है। जब यह तीनों एकरूप पूर्णता को प्राप्त होते हैं तो सर्व मनोरथ पूर्ण होते हैं। आत्मा की अनंत गाथा को गणधर भी नहीं जान पाते हैं। इसकी चर्चा सर्वार्थसिद्धि के देव 33 सागर तक करते हैं परन्तु वह भी कम है। आत्मा आकाश से भी विराट, अनेक गुण, अनंत पर्याय, अनंत प्रतिच्छेद सहित है। पंच परावर्तन में हर क्षेत्र में विश्व के हर प्रदेश में जन्मा-मरा व पुद्गलों को खाया है। अनेक बार भाव परिवर्तन में असंख्य लोक प्रमाण भाव खराब किये जिससे अनंत ज्ञान व अनंत सुख सब छिप गया। हमारे मन में असंख्य लोक प्रमाण विचार उत्पन्न होते हैं। मन की सम्यक् कल्पनाओं को करना मनोरथ है।

सम्यग्ज्ञान को बीच में रखा गया है। क्योंकि वह सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र दोनों को दृढ़ करता है। ज्ञान का प्रकाश देता है। सम्यग्दृष्टि ही मनोरथ पूर्ण कर सकता है, अन्य राजा-महाराजा-चक्रवर्ती नहीं। आत्मा के ज्ञान-अनुभव-आचरण श्रद्धान से ही आचार्य, गणधर, अरहंत, सिद्ध तक पदवियाँ मिलती हैं। आकांक्षा, इच्छाएँ, डिजायर, निदान यह मनोरथ नहीं है। मनोरथ के बाद कोई ओर इच्छाएँ नहीं रहती हैं सब पूर्णता को प्राप्त होती हैं। शत्रु-मित्र, धनी-गरीब सबको समान भाव से देखना यह समता भाव है। इसी के द्वारा सर्व मनोरथ पूर्ण होते हैं।

स्वाभिमान से सोऽहं भाव व इससे अहं भाव प्राप्त होता है। अपने आपको मानव-दानव नहीं भगवान् मानना है। राग-द्वेष छोड़कर अकिंचन बनने से ही अच्छे भाव होते हैं। अच्छी भावना कभी मरती नहीं है, तीन लोक में फैल जाती है। गुरुओं के पास समुद्र की तरह ज्ञान होता है। हमारी पात्रता के अनुसार हम ग्रहण करते हैं जैसे समुद्र तो बड़ा है पर पात्र लोटा हो तो उतना जल, घड़ा हो तो उतना उसके अनुसार जल भरेगा। ज्ञानी आत्मा कभी किसी को छोटा व किसी को बड़ा भी नहीं

मानता वह अनुभव करता है कि आत्मा में अनंत शक्ति है। आत्म धर्म में लीन होते हुए मर जाना व समाधि लेना श्रेष्ठ है। हमारी आत्मा में इतनी शक्ति है कि तीन लोक के समस्त पर्याय व जीवों को एक साथ बिना इन्द्रिय, मन व शरीर की सहायता से देख-जान सकता है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने पुनर्वास कॉलोनी की धर्मसभा में बताया कि हम जब शुद्ध हो जायेंगे तब समस्त ब्रह्माण्ड हस्त अमलवत् अर्थात् हमारे हाथ में रखे हुए आँवले की तरह दिखाई देगा। श्रावक धर्म व मुनि धर्म साधन है। शरीर व आत्मा को एक मानना बहिरात्मा है। आत्मा का शुद्ध रूप प्राप्त करने का लक्ष्य होना चाहिए। चक्रवर्ती के एक रत्न 12 योजन लंबाई, चौड़ाई, ऊँचा होता है तथा उसकी 1000 देव रक्षा करते हैं। कोहीनूर हीरे से भी अधिक अनंत मूल्य वाले हीरे हमारी आत्मा में हैं। असंख्यात आत्मप्रदेश में 3 का गुणा सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र्य करने पर अनंत गुण हो जाते हैं। मोबाईल में तरंगें कनवर्ट होकर अनंत शक्ति वाली होती हैं जैसे ही आत्मा शुद्ध होने पर शक्ति अनंत गुणा बढ़ जाती है। हर जीव अद्वितीय है अ+द्वितीय एक द्रव्य जैसे दूसरा द्रव्य नहीं होता है। पशु-पक्षियों, मानवों का जितना वजन है उससे कई गुना अधिक वायरस, बैक्टीरिया का होता है। हर जीव स्वतंत्र है, कोई किसी का मालिक, मजदूर, पति-पत्नी नहीं। सब अपने-आप में अद्वितीय है। परम लोकतंत्र व परम साम्यवाद आध्यात्मिक है। दूसरे द्रव्य सब सहायक है। ऐसा मानने पर सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान होता है। आत्मा के वैभव को कोई बाधित नहीं कर सकता। इसलिए यह अव्याबाध है। आत्मा के सुख स्वयं के अधीन है अतः स्वाधीन है। आत्मा के अधीन रहना स्वाधीन है। साधु आंशिक रूप से व सिद्ध भगवान् पूर्ण रूप से स्वाधीन होते हैं। लौकिक से पूर्णतः परे है आध्यात्मिक। जो मन को तंत्रित करे वह मंत्र है। माया, दिग्विजय मंत्र, यंत्र से सिद्ध भगवान् विलक्षण विपरीत है। भगवान् भी संसार में रहते हैं, तब तक लौकिक कार्य करते हैं परन्तु इसे अपना नहीं मानते, लक्ष्य आत्मकल्याण का रखते हैं। आइंस्टीन के मस्तिष्क का एक भाग विशेष 15 प्रतिशत अधिक था। सामान्य लोगों से इनका चिंतन अधिक था। परन्तु आइंस्टीन परम जीनियस नहीं थे, परम विज्ञानी नहीं थे आंशिक तज्ञ थे। परम जीनियस, परम विज्ञानी सर्वज्ञ होते हैं। सर्वज्ञ अनंतज्ञानी, गणधर असंख्यात ज्ञानधारी अन्य सभी साधु संख्यात ज्ञानधारी भगवान् के समवशरण में होते

है। आइंस्टीन को नोबल पुरस्कार मिला था। एडीसन, कबीर, बुद्ध, महावीर कोई स्कूल नहीं गये थे। आइंस्टीन को इंग्लिश नहीं आती थी, यहूदी थे। स्वयं की लगन व योग्यता ही व्यक्ति को महान् बनाती है। आत्मज्ञानी ही जीनियस है। जहाँ तक कर्म है वहाँ तक लौकिक है। सिद्ध भगवान् का स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। लौकिक कार्य असि, मसि, कृषि, सामाजिक, आर्थिक, शिल्प आदि से आत्मा का कोई लाभ नहीं होता। स्वाध्याय, पूजा-दान, विधान, ग्रंथ लेखन सब आत्मा को शुद्ध बनाने के लिए करने पर यह अलौकिक है। सब जीव अद्वितीय है, एक समान दिखने पर भी कभी एक जैसे नहीं हो सकते हैं। मेरा स्वयं का अस्तित्व होने पर ही पंच परमेष्ठी व सब धर्म का उपयोग है। आंशिक रूप से नारकी, 4 गुणस्थानवर्ती भी स्व-पूजा करता है। तीर्थंकर आदिनाथ भी जब तक गृहस्थी में थे तब तक उन्होंने आध्यात्म का ज्ञान नहीं दिया। क्योंकि श्रद्धा, ज्ञान व आचरण तीनों होने पर ही उपदेश दे सकते हैं। स्वयं का आचरण ही शिक्षा देता है। अलौकिक सेवा आत्मा की सेवा है। पापों के पक्षालन के लिए आहारदान, पूजा, तीर्थयात्रा सब है। समुद्र में घड़ा या शीशी उल्टी रखने पर भी नहीं भरेगी क्योंकि उसमें हवा भरी हुई है। शीशी भरने के लिए हवा निकालनी पड़ेगी ठीक उसी तरह ज्ञान प्राप्त करने के लिए बुराइयाँ मिटानी पड़ेगी अपनी कमियाँ दूर करनी पड़ेगी। दीपक के जलाने पर अंधेरा दूर होता है, प्रकाश फैलता है नया अंधेरा नहीं आता है। इसी प्रकार सद्ज्ञान का प्रकाश होने पर अज्ञान दूर होता है, ज्ञान बढ़ता है, बुराइयाँ मिटती हैं, दोष दूर होते हैं।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि पूजा स्वयं में पूज्य के गुण उत्पन्न करने के लिए की जाती है। निर्दोष होने पर स्वयं का जीव परमात्मा बनेगा। आराध्य व आराधक स्वयं है। भाव नमस्कार प्रथम है। पूजा में भक्त पूजक के गुणों का स्तवन बार-बार करता है। गुण-प्रशंसा करना ही पूजन है। गुणों का जब बार-बार चिंतन करेबा तो स्वयं के दोष दूर होंगे व पूजक के गुण विकसित होंगे। साधु स्व-आत्मा का ही चिंतन-मनन करता है तो वह परम पूजनीय, पूज्य, पूजक बन जाते हैं। साधु की बहिर्दृष्टि नहीं होती, अंतर्दृष्टि होती है जिससे भगवान् बनते हैं। साधु मूर्तियों के साथ-साथ जीवन्त मनुष्यों का पंचकल्याणक करते हैं। हर जीव का कल्याण करना साधु का उद्देश्य है। साधु स्व-कल्याण के साथ-साथ विश्व कल्याण चाहते हैं। हिटलर ने साढ़े पाँच करोड़ लोगों की हत्या की, शादी तक नहीं की। परन्तु उसे अंतिम



समय ज्ञात हुआ कि उसने स्वयं के लिए कुछ नहीं किया। बंधी मुट्टी आया व हाथ पसारे चला गया। जब सिकंदर भारत आया था तो उसके गुरु से आशीर्वाद लेने गया तब उनके गुरु ने कहा कि तुम भारत जा रहे हो तो जिनके पास कुछ नहीं है जो परिग्रह रहित निर्ग्रथ हो ऐसे साधु को लेकर आना। उसने अपने सैनिक को मुनिराज के पास भेजा, कहा कि सिकंदर बादशाह ने बुलाया है लेकिन साधु किसी के सेवक नहीं होते वह ध्यान में लीन थे। वह कुछ नहीं बोले। जब सिकंदर के आग्रह पर भी कुछ नहीं बोले तो साधु पर क्रोध करके मारने गया तो भी साधु डरे भी नहीं व ध्यान में लीन ही रहे तो उसे आश्चर्य हुआ। गुरु के चरणों में गिरकर बार-बार अनुनय-विनय करने लगा कि आप हमारे साथ चलो मेरे गुरु ने आपको बुलाया है। सिकंदर के विनयपूर्वक आग्रह को देखकर आचार्य महाराज ने एक कल्याण मुनि को भेजा जिनका नाम कारलाईज रख दिया। सभी इष्ट मनोरथ केवल आध्यात्म व धर्म से ही प्राप्त हो सकते हैं। जब तक आत्मा को पवित्र, निर्मल, शुद्ध नहीं करेंगे तब तक सब उपलब्धियाँ व्यर्थ हैं। इच्छाएँ, कामनाएँ छोड़ने पर अधिक शांति प्राप्त होती है। धन से धर्म नहीं होता धन के त्याग से धर्म होता है। महान् आकांक्षा व उद्देश्य के लिए महान् भाव, पवित्र भाव आवश्यक है।

तन, मन, इन्द्रिय में मैं हूँ परन्तु मैं तन, मन, इन्द्रिय नहीं हूँ। पानी आग के संपर्क से गर्म हो जाता है परन्तु आग रूप नहीं बन जाता है। जिस प्रकार गाय रस्सी से बंधी है। रस्सी खोलने पर गाय खुल जाती है वैसे ही आत्मा कर्मों के कारण शरीर से बंधा हुआ है। कर्मों की गाँठ खुलने पर आत्मा मुक्त हो जाती है। राग-द्वेष मिटने पर स्वयं को स्वयं का नमस्कार, पूजा, आराधना, वंदना करते हैं। गुरुदेव भेदभाव छोड़कर स्वयं में लीन होकर लिखते हैं, कर्म, मार्गणा, गुणस्थान आदि पढ़ाते समय भी गुरुदेव स्वयं का अनुसंधान करते हैं। रागी, द्वेषी, मोही से वे स्वयं की प्रशंसा नहीं चाहते। स्वयं की प्रशंसा स्वयं द्वारा ही करते हैं। जन्मांध व्यक्ति सूर्य को नहीं देख सकता। उसी प्रकार रागी, द्वेष, मोही गुणों को नहीं देख पाता। स्वयं के दोषों की निंदा व गुणी के गुणों की प्रशंसा भक्ति से करने पर आत्मगुण प्रकट होते हैं। जिससे स्व-आत्मा को जानता है व दूसरों की आत्मा की प्रशंसा करता है। रामचन्द्र हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्म तीनों के अनुसार भगवान् है। लौकिक में स्वयं की पूजा नहीं होती है दूसरों के द्वारा होती है परन्तु अलौकिक में, आध्यात्म में स्वयं की पूजा स्वयं द्वारा ही होती

है। मुनि, क्षायिक, सम्यग्दृष्टि, निकट भव्य ही सर्वार्थसिद्धि के देव बनते हैं। आत्मा में तन्मय होना, आत्म स्वभावमय होना आत्म प्रशंसा है। आत्मा का गुणगान, पूजा करने वाला आराधक है। आत्मा में अनंत गुण, शक्ति, वीर्य का संबंध तन्मय संबंध, स्वयं के भाव में उत्तम गुणों का स्मरण, लेखन, चिंतन भाव नमस्कार है। बोलना उच्चारण करना द्रव्य नमस्कार है।

**शिक्षा-मोक्ष** का कारण शुद्धोपयोग है। संपूर्ण इष्ट मनोरथ अपने भावों को शुद्ध, पवित्र, निर्मल करने पर पूर्ण होंगे। आत्मा को परमात्मा बनाना ही सर्व इष्ट मनोरथ पूर्ण है।

विकल्पों का न होना ही आपके दिमाग व बुद्धि को बढ़िया ढंग से परिमार्जित कर देता है। हेनकी ए. सिंगर

जिस प्रकार पानी स्वच्छ व स्थिर होने पर प्रतिबिंब सही दिखाई देता है वैसे ही संकल्प-विकल्प, इच्छाएँ, कामनाएँ, राग-द्वेष होने पर मन में शांति व समता नहीं आ सकती है। जहाँ विकल्प होता है वहाँ संकल्प, इच्छाएँ, कामनाएँ होती हैं। स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए गुरु को ही देखना, गुरु को ही सुनना, इसी बारे में सोचने की आवश्यकता होती है। देखने में 1/3 भाग ऊर्जा नष्ट होती है। मन को स्थिर करने के लिए, बुद्धि बढ़ाने के लिए संकल्प छोड़ने पड़ेंगे।

**बिसलोड थ्योरी**-भाव पवित्र होने पर दुर्घटनाएँ कम, टेंशन कम।

सर्वज्ञ पूर्ण ज्ञाता होते हैं। सर्वज्ञ ने अलौकिक गणित से सिद्ध किया है। इसे कोई खंडन नहीं कर सकता। इसे अपने ज्ञान द्वारा अनुभव कर सकते हैं।

ड्रेस का भी अहंकार रहता है, अच्छा पहनने पर दूसरों को हीन समझते हैं अतः जैन धर्म में कोई ड्रेस नहीं है। सांसारिक कार्य में लगा रहना आर्तध्यान है। मोह के कारण संकल्प-विकल्प रोद्रध्यान है। वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। आत्मा के स्वभाव को समझना धर्म है। देव-शास्त्र-गुरु, रत्नत्रय, दस धर्म को आत्मा से जोड़ना धर्म है। भाव विशुद्धि होने पर सर्व मनोरथ अपने आप पूर्ण होते हैं। धर्मफल छाया की तरह बड़ा होता है। धर्म के माध्यम से धन कमाना माँ को वैश्या बनाकर धन कमाने के बराबर है। आत्मा में सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं। धर्म का अचिन्त्य फल सर्व मनोरथपूर्ण होना है। अभिनय का अर्थ सामान्य लोगों की कल्पना से परे। आत्मा का अनंत सुख अनंत वैभव आत्मा का अनंत चमत्कार है। चैतन्य का चमत्कार है।

वैज्ञानिक व जादूगर का भौतिक चमत्कार है।

वैभाविक भावों को, संकल्प-विकल्पों को छोड़कर स्व-शुद्धात्मा में लीन होने पर जीव की परम शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है सर्व मनोरथ पूर्ण होते हैं।

हेडिंग के अक्षर बड़े होने चाहिए वह एड्रेस है। हेडिंग पढ़ने से पूर्ण विषय का ज्ञान होता है। शब्दानुसारी ऋद्धि में भी एक शब्द से पूरे विषय का ज्ञान होता है।

ज्ञान सूर्य है। ज्ञान रूपी प्रकाश में सब भ्रम मिट जाते हैं। सम्यग्ज्ञान से ही सम्यग्दर्शन परिशुद्ध परिपक्व होता है। मुनि का मुख्य आवश्यक धर्मध्यान व अध्ययन तथा श्रावक का धर्म दान व पूजा है। मुनि की पूजन ही सरस्वती पूजन है, सरस्वती पूजन ही केवली भगवान् की पूजन, सर्वज्ञ की पूजन है।

देव अर्थात् भगवान् प्रतीक है, शास्त्र भी प्रतीक प्रमाण है जिसे जीवन्त गुरु समझाते हैं। बिना गुरु आध्यात्म ग्रंथ पढ़ने से अधिक भ्रष्ट हो जाते हैं। गुरु ही देव से शास्त्र के माध्यम से जोड़ते हैं। शास्त्र कम्पास, नक्शा है, गुरु शोधार्थी है। गुरु ही सर्वश्रेष्ठ है, जो आध्यात्मिक है। तीन लोक को प्रकाशित करने वाले सर्वज्ञ भगवान् के वचन आगम है। हस्त अमलकवत् हाथ में रखे हुए आँवले की तरह स्पष्ट दिखाई देते हैं। जिनवाणी व गुरु का आवलंबन लेकर भगवान् की पूजा तीनों की पूजा है। जिनवाणी गुरु के माध्यम से बोलती है। गुरु शास्त्र के मर्म को जानने वाले, अनुभव करने वाले होते हैं। जहाँ से गुण मिले इसे स्वीकार करना चाहिए। स्वाध्याय से असंख्यात गुनी कर्मनिर्जरा होती है। इससे सातिशय पुण्य बंध होता है, राजा-महाराजा, चक्रवर्ती, अहमिन्द्र, गणधर बनकर मोक्ष जाते हैं। यथार्थ सही आगम का ज्ञान न होने के कारण सब धर्म में लड़ाइयाँ होती हैं। साधु की क्या चर्या है, श्रावक की क्या चर्या है वह आगम के द्वारा ज्ञात किया जाता है।

## मनुष्य जन्म की दुर्लभता

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता के बारे में बताया कि जीव का क्रम विकास जो विज्ञान में डार्विन ने बताया है इससे कई गुना स्पष्ट हजारों वर्ष पूर्व जैनागम में वर्णित है। परन्तु सभी आचार्य इसे सही समझ नहीं पाते क्योंकि प्राकृत, संस्कृत व आधुनिक विज्ञान का ज्ञान होने पर इसे सही समझ सकते हैं। जीव सबसे पहले निगोद में अनंत काल तक रहा, वहाँ से निकलना अति

दुर्लभ है, क्योंकि 6 महीने 8 समय में 608 जीव नित्य निगोद से निकलते हैं। इतने ही समय में 608 जीव मोक्ष जाते हैं। निगोद से निकलकर एकइन्द्रिय द्विइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय। पंचेन्द्रिय बन भी जाय तो अधिकाधिक बार पशु-पक्षी, नारकी ही बनते हैं। इसमें मनुष्य जन्म पाना घोर समुद्र में चिंतामणि रत्न को डालकर वापस पाप करना जैसा है। मनुष्य जन्म मिल गया तो उत्तम कुल पाना दुर्लभ है। उत्तम कुल मिल जाये तो सभी अंगों का सही प्राप्त करना दुर्लभ है। सभी अंग सुरक्षित है तो जैन धर्म को जैन आगम के ज्ञाता व आगम के रहस्यों के उद्घाटनकर्ता साधु का मिलना दुर्लभ है। साधु भी प्राप्त हो जाये पर उनके द्वारा दिये जाने वाले आगम ज्ञान में रुचि होना दुर्लभ है। आगम में रुचि भी हो जाये परन्तु स्वआत्मा को परमात्मा बनाने के लिए आगम अनुभवात्मक ज्ञान होना दुर्लभ है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने प्रवचनसार का अर्थ बताते हुए कहा कि सर्वज्ञ भगवान् के प्रकृष्ट वचनों का सार जिसमें गर्भित है वह प्रवचनसार है। आत्मा की उपलब्धि-शब्द ब्रह्म से परम ब्रह्म अरहंत सिद्ध के वचन है। गुरु से आत्मज्ञान प्राप्त करने को देशनालब्धि कहते हैं। देशनालब्धि से आत्मज्ञान के बाद अंतर्मुहूर्त से 2-3 भव या अधिक से अधिक 7-8 भव में मोक्ष होता है। त्रिभुज बनाने के लिए जिस प्रकार तीन भुजाओं का होना जरूरी है वैसे ही धर्म के लिए रत्नत्रय जरूरी है। कथा-कहानी, देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप जानना, तीर्थकरों का गृहस्थ जीवन, दान, साधु बनना, लौकिक ज्ञान, मार्गणा, गुणस्थान का ज्ञान, धार्मिक रीति रिवाज, हित-मित भाव, व्यवहार सब व्यवहार धर्म है। व्यवहार सम्यक्त्व को जानने के बाद जो आत्मा को जानने की रुचि है वह निश्चय सम्यक्त्व है। निश्चय के लिए व्यवहार आवश्यक है। स्वयं की आराधना करने पर निश्चय सम्यग्दर्शन प्रारंभ होता है। यह चौथे गुणस्थान से प्रारंभ होकर 14वें गुणस्थान में पूर्ण होता है। साधु बनने का अर्थ अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्याग है। स्व-शुद्धात्मा में लीन होना वीतराग चारित्र्य है। इच्छानुसार दान देने को किमिच्छकदान कहते हैं। यह तीर्थकर दीक्षा के 12 वर्ष पूर्व देते हैं व चक्रवर्ती भी देते हैं। तीर्थकर 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त में व्रति बन जाते हैं।

## गुरु शिष्य की गाड़ी

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि गृहस्थ अवस्था में दान

श्रेष्ठ है व साधु बनने के बाद त्याग सर्वश्रेष्ठ है। जो श्रावक व्रत व मुनिव्रत धारण करते हैं वह शिष्य है। शिष्य में समर्पण भाव होता है गुरु के गुण के प्रति भक्ति होती है। जिस प्रकार बाईसाईकिल के दोनों पहिये होना आवश्यक है वैसे ही धर्म में गुरु-शिष्य व श्रावक-साधु दोनों का होना आवश्यक है दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दोनों के स्वस्थ रहने से ही धर्म की गाड़ी बढ़ सकती है। जिस प्रकार बीज बोने पर फल अवश्य आता है वैसे ही धर्म करने पर सुख-शांति का फल स्वयंमेव मिलता है। गुरु-शिष्य को ऊपर उठाने के लिए विकसित करने के लिए डाँटते हैं व संसारी नीचा दिखाने के लिए डाँटते या प्रशंसा में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा छुपा रहता है। गुरु का उद्देश्य अनादर्श को आदर्श बनाना होता है। जिस प्रकार रोग दूर करने के लिए डॉ. ऑपरेशन करता है दवाइयाँ देता है वैसे ही शिष्य के दोष दूर करने के लिए गुरु डाँटते हैं।

जिनके पास शिष्य विनय से आकर अध्ययन करते हैं वह उपाध्याय है। शिष्यों को आचार्य पढ़ाते हैं व दंडित भी करते हैं। दंडित न करने पर शिष्य की गलतियों का दोष आचार्य को लग जायेगा। गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य में सुधार करे। धर्म में भी न्याय के लिए, अनुशासन के लिए शिष्य को दण्ड व प्रायश्चित्त देते हैं। धर्म परम प्रयोग है जो आत्मा पर होता है। केशलौच, आहार, नग्नता, स्वाध्याय, मूलगुण, व्रत सब त्रिजा अर्द्ध व्यास है इसका केन्द्र बिंदु आत्मा है। केवलज्ञान होने के बाद साधु स्नातक बनते हैं। शिष्य को विनय भी कहते हैं क्योंकि वह विनयवान् व अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करता है।

केवल चुप रहना ही समता नहीं है। समता में अनंत शक्ति है वह राग-द्वेष, काम-क्रोध, ईर्ष्या-घृणा किसी से भी परास्त नहीं हो सकती। गुरु सांसारिक विभावों को नदी के तट पर खड़े होकर देखते हैं, परन्तु विभावों रूपी नदी में बहते नहीं हैं। समता के बिना अनंत जीव दुःख पाते हैं। समता में संवर, निर्जरा सब संभव है। समता बिना शांति नहीं मिलती है।

समता बिना जप तप से भी मुक्ति नहीं मिलती है। द्वीपायन मुनि की समता बिना 12 वर्ष की तपस्या भी नष्ट हो गई। अनादिकाल से जीव स्वयं को नहीं जानने के कारण काम-क्रोध, भोग, भ्रष्टाचार, शोषण, चोरी, डकैती, हत्या, बलात्कार आदि करता है क्योंकि जीव यह नहीं जानता कि इन सब पाप कार्यों का फल पूरा परिवार

नहीं भुगतेगा उसे स्वयं ही कर्मफल भोगना है। कर्म संस्कार के कारण पक्षी दूर-दूर से आते हैं।

मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ यह जानने के लिए शिष्य बार-बार प्रश्न करता है। क्योंकि आत्मा में अनंत गुण व अनंत शक्तियाँ हैं उसकी अभिव्यक्ति व प्राप्ति के लिए ही धर्म है। गुरु हमें आत्मविशुद्धि, समता, शांति का ज्ञान आगम की साक्षीपूर्वक कराते हैं। धर्म का, आत्मा का ज्ञान नय व प्रमाण सहित होता है। इसे कोई खंडन नहीं कर सकता। विज्ञान भी अभी तक वहाँ पहुँचा नहीं जहाँ करोड़ों वर्ष पूर्व हमारे परम वैज्ञानिक सर्वज्ञ भगवान् पहुँचे थे।

निर्मल परिणाम से क्षयोपशम बढ़ता है। वह गुरु व आगम के माध्यम से ही संभव है। जिस प्रकार अंधेरे में दर्पण भी है, मुँह भी है तो भी चेहरा नहीं देख सकते वैसे ही मोहनीय कर्म सत्ता में रहने पर ज्ञान अनुभव में नहीं आयेगा। आगम ज्ञान, गुरुवाणी रूपी बाण से ही आत्मा तक पहुँचता है। गुरु के बिना आगम के गूढ़ रहस्य नहीं समझ सकते। आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्मसंवित्ति आत्मा ही परमात्मा है।

अहंकार, दीनता, हीनता आदि विभाव है, अनात्म भाव है। अनुजीवी गुण आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। प्रतिजीवी गुण कर्म के अभाव से आत्मा में प्रकट होते हैं। आत्मा अनुपम उपमा से रहित है। स्व-शुद्धात्मा उपाधि रहित है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि प्रत्येक द्रव्य में शुद्ध हो या अशुद्ध सबमें परिणमन होता है। हमारी आयु प्रतिक्षण कम हो रही है, हममें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है परन्तु हमें दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार सर्दियों में कम वाष्पीकरण होता है तो वाष्प कण जम जाते हैं तथा गर्मियों में अधिक वाष्पीकरण होने पर दिखाई नहीं देता। पंखा धीरे-धीरे चलने पर पंखुड़ियाँ दिखाई देती हैं तेज चलने पर नहीं। संसारी जीव व कर्म का मिश्रण को मेचक कहते हैं। 13वें गुणस्थान में भाव शुद्ध अमेचक होता है। मोक्ष का इच्छुक मुमुक्षु है। जो शाश्वत है कभी उत्पन्न नहीं होते वह शिव है। मैं अर्थात् आत्मा की कहानी जिनवाणी माँ को छोड़कर कोई वैज्ञानिक, दार्शनिक नहीं जान सकते। मेरी आत्मा की कहानी सुनाने के लिए अन्य की कहानी सुनते हैं। आत्मा की कहानी केवल सर्वज्ञ भगवान् ही जानते हैं गणधर तक उनकी

संपूर्ण कहानी नहीं जान सकते। आत्मा का संपर्क आत्मा से नहीं हुआ, अन्य सभी से हो गया। आत्मा की कहानी नाटक, सिनेमा सबसे विचित्र है। क्योंकि इस आत्मा ने अनन्त चोले पहने हैं कभी नरक गया, कभी स्वर्ग, कभी मनुष्य तो कभी तिर्यच गति में नाना प्रकार के दुःख भोगे। कभी हत्या, बलात्कार, मारपीट, भूख, प्यास, बोझा ढोना, दर्द, पीड़ा, यातनाएँ, जन्म-मरण आदि अनंत दुःखों को अनंत भवों से यह जीव भोगता आ रहा है। ऐसी उत्थान-पतन की विचित्र कहानी है।

सबको जानना चाहा परन्तु मैं को नहीं जानना चाहा। अतः गुरुदेव मैं का ही रात-दिन अनुसंधान करते हैं। आत्म चिंतन का एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना नहीं चाहते। गुरुदेव स्वाध्याय में मैं की चर्चा करते हैं अतः यह सुनते हुए ढाई घंटे कैसे एक पल में बीत जाते हैं पता नहीं चलता। श्रुतज्ञान से आत्मा का स्वरूप समझ में आता है। आत्मज्ञान प्राप्त करना काकतालीय संयोग के बराबर है। काकतालीय का अर्थ है कि ताड़ के वृक्ष पर कौए का आकर बैठना व वृक्ष का गिर जाना। वागड़ी में कहावत है कागला ने बेवु ने डारा ने टुटवु भागवु। आत्मज्ञान समझना बड़ा कठिन है। छोटा बच्चा अनभिज्ञ हो तो उसे समझाना सरल होता है और जो उच्च शिक्षित है उसे भी जल्दी से समझा सकते हैं परन्तु मध्यम वर्ग को समझाना बहुत कठिन है। 'अधजल गगरी छलकत जाय।' गुरुदेव को शिष्यों को समझाने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है। कठिन विषय की सामान्य जानकारी से पूर्णतः ज्ञान व उपलब्धि नहीं होती है। धर्म की ईकाई स्वयं का आत्मा है। ईकाई न होने पर शून्य की कोई कीमती नहीं वैसे ही धर्म को आत्मा के साथ न जोड़ने पर धर्म का कोई फल नहीं। स्वयं को जब द्रव्य रूप से शक्ति रूप से नहीं जानता है कि मैं आत्मा रूप से निज परमात्मा पद प्राप्त करूँगा व सही श्रद्धान नहीं करे तब तक सब व्यर्थ है। आधुनिक वैज्ञानिक भी आत्मा को शरीर व मन से परे मानते हैं। आत्मा में स्थिर रहना अनुष्ठान है। जिस प्रकार अगरबत्ती एक है परन्तु उसका धुआँ पूरे रूम में फैल जाता है एकमेक हो जाता है वैसे ही हमारे आत्मा के गुण जिस शरीर में जाते हैं उस शरीर रूप एकमेक हो जाते हैं। हमारी आत्मा के संपूर्ण अनंत गुण शक्कर में मिटास की तरह मिले हुए हैं। जब तक दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप आचरण न होगा तब तक आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते। हमारे पुराने आचार्य 200-300 हजार वर्ष पूर्व कितने ज्ञानी थे वह इन गहन शास्त्रों से ज्ञात होता है। क्योंकि ये प्राकृत व संस्कृत की

गाथाएँ लेखक के व्यक्तित्व, कृतित्व व चरित्र को दर्शाती है।

कोई कार्य गलत हो या सही अकेले करने पर मैं का ही प्रयोग करना चाहिए। अकेले करने पर भी हम 'हम' का प्रयोग करके बहुत पाप कमाते हैं। हम बोलने से जिन्होंने दोष नहीं किया उनको भी साथ लेने से बहुत दोष लगता है। इस प्रकार अनावश्यक बहुत पाप करते हैं।

## आत्मा की सम्यक् संवेदना सम्यक् संवित्ति ही ज्ञान है

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि आत्मा के परिणाम को ज्ञान कहते हैं जितने अंश में चेतना उत्पन्न होती है उतने अंश में ज्ञान बढ़ता है। जो आत्मा की सम्यक् संवेदना, सम्यक् संवित्ति है वह ही ज्ञान है। अनंत ज्ञान का स्रोत आत्मा है। संपूर्ण ज्ञान को आत्मा से जोड़ने पर ज्ञान का सदुपयोग होगा। सम्यग्ज्ञान मध्य दीपक है जो दर्शन व चारित्र दोनों को शुद्ध व दृढ़ करता है। ज्ञान से मन में शांति व आत्मविशुद्धि बढ़ती है। श्रुतज्ञान स्वात्माभिमुख संवित्ति है। मतिज्ञान, बुद्धिलब्धि, सूचनाएँ, कविता लिखना, पढ़ना यह आत्मज्ञान नहीं है। बुद्धि के बाद भावात्मक उपलब्धि को अधिक महत्व दिया जाता है। विद्या की मुख्य धारा आध्यात्म है। आध्यात्म के कारण ही भारत विश्वगुरु था। गुरु आध्यात्म ज्ञान देने वाले ही होते हैं। आध्यात्म ज्ञान से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है अतः आनंद आता है। जो ज्ञान आत्मविशुद्धि सहित कषायों से रहित है उसमें आनंद अधिक आता है। लाईट के बल्बों के डेकोरेशन कर दे परन्तु मेन स्वीच से न जोड़ेंगे तो डेकोरेशन नहीं होगा वैसे ही धर्म को आत्मा से जोड़ने पर ही आनंद आता है। विशेष ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। ज्ञान व विज्ञान से सम्पन्न एवं ध्यान, अध्ययन और तप से युक्त तथा कषाय और गर्व से रहित मुनि शीघ्र ही संसार को पार कर लेते हैं। जिस ज्ञान में कषाय व अहंकार है वह ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञान का गौरव करना चाहिए। मिथ्याज्ञान में भी गर्व नहीं करना चाहिए। बौद्धिक संकीर्णता, भावात्मक संकीर्णता से विकास नहीं होता। भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए अनंत पाप कमाते हैं। जिसके कारण अनंत सुख देने वाले धर्म से दूर रहते हैं अतः सुख से भी दूर रहते हैं। जिस प्रकार धागे सहित सूई हो व धागा हमारे हाथ में हो तो कितनी भी दूर सूई डालेंगे हमें तुरन्त मिल जायेगी ऐसे ही सूत्र के ज्ञान से सहित पुरुष प्रमाद दोष से भी भटकता नहीं।



## “स्वाध्याय परम तप”

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि स्वाध्याय परम तप है। स्वाध्याय से विनय, एकाग्रता बढ़ती है। मन, वचन, काय इन त्रि-गुप्तियों को वश में करके तथा पंचेन्द्रियों को वश में करके स्वाध्याय करने से असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा होती है वैसे अन्य तप से संभव नहीं है। तीन लोक में तीन काल में स्वाध्याय बराबर कोई तप नहीं है। एकाग्र मन होने पर पाप नष्ट होते हैं व मन पवित्र होता है जिससे पुण्य बढ़ता है। स्वाध्याय स्व-अध्ययन है। स्वाध्याय से कषायें कम होती हैं, राग-द्वेष, निंदा-घृणा, संकल्प-विकल्प, द्रव्य पाप व भाव पाप सब कम होते हैं। स्वाध्याय गुरु के माध्यम से करने पर अनंतगुणा फल में वृद्धि होती है। हमारी जिज्ञासाओं का समाधान गुरु अनेक उदाहरण देकर विषय को आत्मा तक पहुँचाते हैं। स्वाध्याय में विषय की, आध्यात्म पुस्तकों की वाचना ही नहीं, उसके साथ उसको समझना अपने स्वयं में घटित करना यह मंथन है। स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान मंथन से हमारे पूरे आत्म-प्रदेशों में एक रस हो जाता है व यह आत्मा तक पहुँचता है जिससे हमारे भावों में विशुद्धि बढ़ती है। भाव विशुद्धि से ब्रह्माण्ड के शुभ परमाणु हमारी ओर आकर्षित होते हैं व अशुभ को नष्ट कर देते हैं जिससे पुण्य में वृद्धि व पाप कर्मों की निर्जरा होती है। जब तक स्वाध्याय में लीन है नवीन पाप कर्म नहीं आयेगे क्योंकि कोई बुरा विचार ही नहीं कर रहे हैं अतः संवर होगा। स्वाध्याय से क्या ग्रहणीय व क्या त्यजनीय है उसका भी परिज्ञान बढ़ता है, होता है। स्वाध्याय जब आत्मा तक पहुँचता है तो आनंद के स्रोत बहने लगते हैं जिसे ज्ञानानंद कहते हैं। स्वाध्याय करने से यह अनुभव आता है कि स्वयं का ज्ञान कितना कम है हमारे सर्वज्ञ भगवान् अनंत ज्ञान केवलज्ञान के धारी थे। मुझे भी अनंत ज्ञानी बनना है अतः विद्यार्थी बनकर निरंतर शोध-बोध करता रहूँ।

श्रद्धा से युक्त होकर गुरु से जो जिनवाणी सुनता है वह श्रावक है। भगवान् के समवशरण में पशु से लेकर गणधर तक श्रोता थे। श्रद्धा, विनय, समर्पण सहित है वह शिष्य है। ऋद्धिधारी मुनि में इतना बल होता था कि उनकी एक अंगुली से चक्रवर्ती की सेना परास्त कर सकते थे, एक अक्षर पढ़ने पर पूरा ग्रंथ समझ सकते थे, उनके आहार के बाद शेष भोजन से चक्रवर्ती की सेना भोजन करे तो भी भोजन बढ़ता रहता था। जब तक अनंत ज्ञान न प्राप्त हो तब तक सभी जीव शिष्य व श्रोता ही

रहेंगे। शिष्य को कोई विषय समझ में न आवे तो गुरु को विनयपूर्वक पूछना अंतरंग तप है। ज्ञान व ज्ञानी से विनय व कृतज्ञता रखनी चाहिए। सही सुनने पर ही सही बोल पाते हैं। वह सच्चे श्रोता हैं।

स्वाध्याय औषधि है। औषधि से शरीर के रोग दूर होते हैं जैसे ही स्वाध्याय रूपी औषधि से आत्मा के रोग दूर होकर भवसागर पार हो सकते हैं। स्वाध्याय से वैर-विरोध का नाश होता है। स्वाध्याय से भाषा-ज्ञान, विषय ज्ञान बढ़ता है। भाषा ज्ञान पात्र है तथा विषय ज्ञान समुद्र है। सर्वज्ञ भगवान् सर्व भाषा पारगामी होते हैं। सामान्य रूप से 718 भाषाएँ बोलते हैं। हमारा भाषा ज्ञान बढ़ेगा तो विचार शक्ति भी बढ़ेगी। जितना-जितना ज्ञान बढ़ता जायेगा उतना-उतना अज्ञान का ज्ञान होता जायेगा। एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द से अलग अर्थ वाले होते हैं। जितनी-जितनी योग्यता बढ़ती है विषय को सूक्ष्मता से जानने की योग्यता बढ़ती है। स्वयं को जानने के बाद आत्म विश्लेषण होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र, आत्मा में ही होता है। स्वाध्याय से सत्साहस बढ़ता है व ज्ञान में व्यापकता बढ़ती है। सब क्रांतियाँ कलम से ही हुई हैं। ज्ञान होने पर ही कलम चलेगी। सबसे पहले आत्मज्ञान, सत्यज्ञान करना आवश्यक है।

## स्वाध्याय का फल

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि श्रुत के अध्ययन, मनन, चिंतन, भावना से ज्ञान, दर्शन, संयम, तप में हमारा आत्मा परिणमन करता है। अंधेरा है वहाँ सिद्ध होता है कि प्रकाश नहीं है। स्वाध्याय से स्व का अध्ययन होता है। जो स्वाध्याय करता है वह उस रूप परिणमन करेगा। जीव का स्वभाव उपयोगमय है। जो उपयोग में परिणमन करेगा वह श्रेष्ठ बनेगा। विकार भाव में परिणमन नहीं करेगा। स्व-आत्मा को जानने की कोशिश आत्मा में आत्मा द्वारा होती है। स्व अध्ययन हेतु आगम, देव, शास्त्र, गुरु का अध्ययन होता है। व्यवहार व निश्चय का भेद मालूम होता है, स्व-शुद्धात्मा का अध्ययन होता है, गुणस्थान, मार्गणा का ज्ञान होता है। इन सब को सही समझने के लिए गुरु आवश्यक है, निस्पृही आत्मानुभवी गुरु के पास विनय, उपधान, अणिह्व सहित स्वाध्याय भगवान् के माध्यम से स्वयं को पढ़ना है। भगवान् की भक्ति व धर्म वन वे हैं, संसार टू वे हैं। धर्म एक तरफा ही होता है। स्वयं के लिए

ही, भगवान के लिए नहीं, भगवान् को अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अनंत दर्शन सब कुछ प्राप्त हो गया है। वह उनमें से हमको कुछ दे नहीं सकते। हमें पुरुषार्थ करके उनके गुण स्वयं में उत्पन्न करने हैं जिससे हम भी उनकी तरह बन सके। पूजा, भक्ति, आरती सब गुणानुवाद है। भगवान् कर्ता नहीं है। स्व-कर्मानुसार स्व को सुख-दुःख प्राप्त होते हैं जिस प्रकार 1<sup>0</sup> तापमान बढ़ने पर करोड़ों-अरबों टन बर्फ पिघल जाती है वैसे ही हमारी आत्मा में एक गुण प्रकट होने पर अनंत पाप कट जाते हैं। सम्यग्दर्शन से सातिशय पुण्य बंधता है। स्वाध्याय से आत्मा अनुभव बढ़ता है, आत्मा आप्लावित होता है। जिनवाणी दिव्य ध्वनि है, श्रुतज्ञान है, परोक्ष केवलज्ञान है। मतिज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान श्रुतज्ञान के बराबर नहीं अतः स्वाध्याय को परम तप कहा गया है। श्रुतज्ञान ही केवलज्ञान का कारण है। स्वाध्याय से हिताहित विवेक प्राप्त होता है। आत्मा की ऊर्जा ज्ञान, तप, दर्शन में परिवर्तित होती है। अज्ञानी के लाखों-करोड़ों वर्ष के तप से जितने कर्म की निर्जरा नहीं होती उससे भी अधिक आत्मज्ञानी के एक क्षण में स्वाध्याय से हो जाती है।

ज्ञान दान को धवला में निरवद्य दान कहा है। जिस प्रकार जंगली घोड़ा भी ट्रेनिंग देने पर स्वामीभक्त, बुद्धिमान योग्य बन जाता है वैसे ही जिनवाणी रूपी ट्रेनिंग से जीव सभ्य, शालीन, ज्ञानी बन जाता है। इसीलिए जिनवाणी को शासन, तंत्र, मंत्र कहा है। जिनवचन रूपी औषधि से विषय दुःख दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार विष चिकित्सा करने पर उल्टी कराई जाती है वैसे ही संसारी जीव को विषय-कषाय रूपी विष को दूर करने के लिए स्वाध्याय द्वारा उल्टी होगी, निरसन होगा। सच्चा स्वाध्यायी जानकारी रूपी ज्ञान का समर्थन भी नहीं करता। अज्ञानपूर्वक कर्मबंध कम होता है परन्तु ज्ञान होते हुए भी दोष करे तो उससे अधिक कर्मबंध होता है। ज्ञान का उद्देश्य स्वयं को प्रकाशित करना, आदर्श बनाना है। सब कुछ स्वयं की आत्मा के लिए ही होता है, दूसरों के लिए कुछ भी पुण्य-पाप नहीं होता है।

उपयोग तीन प्रकार का होता है। शुभ, अशुभ, शुद्ध। स्वाध्याय से शुभोपयोग बढ़ता है व अशुभ उपयोग से निवृत्ति होती है। शुभ निदान होता है अशुभ निदान नहीं होता है। जो परम ज्योति अरहंत सिद्ध में है वही मुझ में है इसी का चिंतन व दृढ़ विश्वास होता है। ज्ञान समस्त लोक को देखने वाला चक्षु है। ज्ञान ऋद्धि प्राप्ति की कामना करना चाहिए। ज्ञान का फल सुख है। सुख अविनाशी है, क्षीण नहीं होता,

हीन नहीं होता, विकृत नहीं होता, अविश्वसनीय होता है। धर्म, स्वाध्याय सब अच्युत बनने के लिए है।

शुभ को शीघ्र करो अशुभ को थोड़े समय बाद करो। जिससे अशुभ भी शुभ हो जाता है। करण का अर्थ परिणाम व गणित होता है। पंच परमेष्ठी के साथ स्व-भगवान् को भी जगाना है। देव-शास्त्र-गुरु दर्पण है। उनके माध्यम से स्वयं को देखना है। भगवान् में कितने गुण भरे हैं व मेरे में कितने अवगुण। इन अवगुणों को दोषों को दूर करना ही सच्ची पूजा व भक्ति है।

विज्ञान के अनुसार 1 मिनट में 60,000 विचार आते हैं परन्तु जैन धर्म के अनुसार असंख्यात लोक प्रमाण विचार आते हैं।

कोई भी विषय या शब्द 21 दिन तक प्रयोग में नहीं लाते है तो विस्मृत हो जाता है।

इच्छा शब्द का प्रयोग खोटी भावना के लिए है अच्छे कार्य को भावना कहते है।

**इच्छा**-खोटी भावना या सांसारिक भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने की तृष्णा इच्छा है। धार्मिक कार्यों व स्वयं के उत्थान के लिए की जाती है वह भावना है। जो परम ज्योति अरहंत सिद्ध में है वही मुझमें है इसी का चिंतन सतत करना चाहिए। केवलज्ञान समस्त लोक को देखने वाला चक्षु है। पंच परमेष्ठी के साथ स्व भगवान को भी जगाना है। देव-शास्त्र-गुरु दर्पण है जिनके माध्यम से हम हमारे गुण व दोष देख सकते है। मुझे ज्ञान सिद्धि चाहिए ऐसी भावना करनी चाहिए। ज्ञान का फल सुख है। ज्ञान का सुख अविनाशी, क्षीण हीन नहीं होता, विकृत नहीं होता। धर्म, स्वाध्याय सब अच्युत बनने के लिए करते है।

## “आनंद जीव के स्वयं का ही स्वभाव है”

-आ. कनकनन्दी

स्वाध्याय से यह जीव अशुभ से शुभ से परिणमन करता है। पंच पाप व सप्त व्यसन को त्यागता है। पंचाणुव्रत व त्याग का सेवन करता है अतः स्व अध्ययन हेतु स्वाध्याय है। इससे पर संकल्प-विकल्प दूर होते है। घाती कर्म का नाश कर अरहंत बनता है व अघाति का नाश करके सिद्ध बनता है। आत्मा की शक्ति को गणधर भी

नहीं जान सकते व भगवान् स्वयं भी अरबों-खरबों वर्ष तक बोल नहीं पाते। जितने-जितने अंश में आध्यात्मिक सुख अनुभव करते हैं उतने-उतने हम धार्मिक बनते जाते हैं। आनंद से ही कर्म नष्ट होते हैं। आनंद जीव के स्वयं का ही स्वभाव है परन्तु वह इसे अन्य जगह ढूंढता है। आनंद के बिना सब सुख निष्फल है। आनंद के बिना सब तत्त्व निर्जीव है। आनंद नहीं आने का अर्थ सचेत नहीं है, जागृत नहीं है। भक्ति में भी आनंद है। भक्ति को सम्यग्दर्शन कहते हैं जिससे आत्मविश्वास जागृत होता है। भक्ति रूपी प्रेम से आनंद आता है। दया, सेवा, परोपकार करने पर अति-आनंद आता है। स्व-पर रक्षा में, आहारदान में सर्वाधिक आनंद आता है, कर्मक्षय से आनंद आता है। जीव का महान् गुण आनंद है सुख सभी प्राणी चाहते हैं। शराब पीने वाले आत्महत्या करने वाले सब उस दुःख से छूटकर सुख प्राप्त करने के लिए करते हैं परन्तु यह नहीं जानते की आगे की पर्यायों में तो अति दुःख है। समता में रहकर दुःखों से सामना करना चाहिए। आत्म स्वभाव ही मोक्ष स्वभाव है। साधु जब आत्मध्यान करते हैं तब इतना सुख प्राप्त होता है कि इन्द्र हजारों देवियों से संभोग करते हुए भी प्राप्त नहीं कर सकता। 1960 में द्वितीय विश्व यद्ध के बाद भोग, अश्लीलता व हत्या को छोड़कर सत्य की खोज प्रारंभ की गई। गृहस्थ अवस्था में हमेशा अच्छे शुभ भाव नहीं आते अतः जब भी शुभ भाव आये तब वह कार्य कर लेना चाहिए। चक्रवर्ती अपने वैभव का भोग करते हुए मरे तो अवश्य नरक जायेगा क्योंकि बहुत आरंभ परिग्रह से नरक गति का बंध होता है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा कि भगवान् के ज्ञान की उपमा केवलज्ञान रूपी सूर्य से दी है जिस प्रकार सूर्य किरण करोड़ों मिल फैलती है उसी प्रकार भगवान् की ज्ञान किरण अनंत आकाश में फैलती है। तिलोपपण्णति सवा दो हजार वर्ष प्राचीन है। 2542 वर्ष पूर्व गणधर देव ने प्रतिक्रमण की रचना की थी। ज्ञान का संपादन करने वाले को वेदव्यास कहते हैं। छंद, अलंकार, व्याकरण शास्त्र के समूह को वाङ्मय कहते हैं। हिन्दी 250 वर्ष ही पुरानी है। दो-तीन हजार वर्ष पूर्व ब्राह्मी लिपी व प्राकृत भाषा में ग्रंथों की रचना की थी। वर्तमान में 400 लिपियाँ प्रसिद्ध हैं।

**स्त्री शिक्षा**-सबसे पहले प्रारंभ स्त्री शिक्षा हुई बाद में पुरुष शिक्षा। इसका प्रमाण है कि आदिनाथ भगवान् के 100 पुत्र होते हुए भी दोनों पुत्रियों को ही प्रथम

शिक्षा दी थी। पहले स्त्री पुरुष में समान अधिकार था, स्त्री के अपेक्षा पुरुष का कम अधिकार था। स्त्री उभय कुलदीपक अर्थात् दोनों कुलों को रोशन करने वाली होती है। अपने बच्चों को संस्कारित माँ ही बनाती है अतः माँ का आँचल प्रथम पाठशाला कहा गया है। ब्राह्मी लिपी आदिनाथ भगवान् की पुत्री ब्राह्मी के नाम पर बनी। गाँवों में जो अनपढ़ ग्रामीण महिलाएँ होती हैं उनमें विवेक, कार्यकुशलता, दक्षता, ममता, सहृदयता, वात्सल्य, अनुभव व अधिक ज्ञान होता है। अतः उनका हर कार्य, भोजन बनाने से लेकर घर चलाना सब अच्छा सुव्यवस्थित होता है। समाज की स्थापना के बाद ही तीर्थंकर का जन्म होता है। परिवार के बाद समाज बनता है। धर्म में आदि युग से ही आर्यिकाएँ, श्राविकाएँ, स्त्रियाँ अधिक ही होती हैं। वर्चस्ववाद के कारण पुरुष स्त्रियों का शोषण करते हैं। गृह की मालकिन स्त्री होती है। तीर्थंकर को जन्म देने वाली स्त्री ही होती है। चुटकुलों में भी पुरुष अधिकतर महिलाओं पर ही व्यंग्य कसते हैं जबकि घर में माँ, बहन, पत्नी के बिना उनका कार्य आगे बढ़ता नहीं। हर महापुरुष की प्रेरणादायी स्त्री ही होती है चाहे माँ रूप में, बहन रूप में या पत्नी रूप में या बेटी रूप में। उनका जन्म, अस्तित्व ही माँ बिना संभव नहीं है फिर भी नारी का अपमान क्यों? भले ही व्यवहार में बोल देते हैं समान अधिकार परन्तु हमेशा स्त्री को दबाकर रखना ही चाहते हैं। प्राचीन काल में भी ब्राह्मी, सुंदरी, सीता, अहिल्या, मैत्री-गार्गी, मैना सुंदरी, सती अंजना, झाँसी वाली रानी लक्ष्मीबाई, मेनका गाँधी, मदर टेरेसा आदि पुरुषों से भी अधिक ज्ञानी, वीर, वात्सल्यमयी महिलाएँ हुई हैं व हमेशा रहेगी। महावीर भगवान् ने भी राजकुमारी बेड़ियों में जकड़ी हुई, दासी रोती हुई चंदनबाला के हाथों से ही आहार लिया। जितने महापुरुष हुए सबने नारी की गरिमा को समझा व उनका उत्थान किया परन्तु वर्तमान की शिक्षा पद्धति के कारण लड़कियाँ अधिक भ्रष्ट हो रही हैं। वर्तमान की शिक्षा प्राचीन शिक्षा की तरह नहीं है।

स्त्रियों के उद्धार के लिए शराब की फैक्ट्रियाँ ही बंद करवानी चाहिए। हर स्त्री में अपनी पत्नी को छोड़कर माँ बहन का रूप देखना चाहिए। हर महिला किसी की बेटी, किसी की बहन, किसी की माँ है। हर इंसान को सोचना चाहिए कि अगर यह मेरी माँ होती तो क्या मैं इसके साथ गलत व्यवहार या शोषण करता? अपने अंदर छिपी हुई इंसानियत को जगाना चाहिए। स्त्री संस्कारित होगी तो बच्चों को भी व ससुराल पक्ष, पीहर पक्ष दोनों को संस्कारित करेगी।

भावना सत्य के लिए व आत्मा की उपलब्धि के लिए की जाती है। जबकि इच्छाएँ दर्शन मोहनीय व चरित्र मोहनीय के कारण होती है। हाथी, हेल मछली, चिता आदि अधिक भोजन करने पर भी प्रकृति को इतनी क्षति नहीं पहुँचाते जितनी मानव अपनी इच्छाओं के कारण प्रकृति का विध्वंस करता है। धर्मग्रंथ भावना के लिए आवश्यक है जबकि लौकिक किताबें आवश्यकता के लिए, इच्छाओं के लिए।

धरसेनाचार्य एक अंगधारी थे। कुंदकुंद आचार्य से कई गुना, अधिक ज्ञानी थे। समाधि का समय था तो भी पुष्पदंत व भूतबली को सिद्धांत शास्त्रों का अध्ययन कराया व श्रुत का लोप होते देख दूरदृष्टि से आगम को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया व श्रुत महोत्सव मनाया।

बीच में हजारों वर्ष तक सिद्धांत ग्रंथों के केवल दर्शन ही होते थे, कभी पढ़ने नहीं देते थे। अतः जैन धर्म विश्व में फैला नहीं तथा सही ज्ञान न मिल पाने के कारण पंथ-मत भेद हुए। शांतिसागर जी ने लोगों के विरोध पर भी सिद्धांत ग्रंथ प्रकाशित कराये यह उनका उपकार है कि हमें सिद्धांत ग्रंथ उपलब्ध हो रहे हैं व आगमज्ञानी साधुओं द्वारा उसका सरलीकरण कर हमें पढ़ाया जा रहा है। भारत उच्च वर्ग में होना चाहिए था वह अभी निम्न व मध्यम वर्ग में है। हमारे जैनागम को पढ़कर विदेशी लाभान्वित हो रहे हैं।

अज्ञान रूपी अंधकार को श्रुतज्ञान रूपी दीपक से ही मिटा सकते हैं। शास्त्र मध्य दीपक है जो देव व गुरु दोनों को दिग्दर्शन कराने वाला है।

कुंदकुंद ग्वाले की पर्याय में निकट भव्य व भद्र मिथ्यादृष्टि थे। जो शास्त्र को न समझते हुए भी जैन मुनि को भेंट किया जिससे वह अगले भव में कुंदकुंद आचार्य हुए।

केवलज्ञान के बाद बड़ा ज्ञान श्रुतज्ञान है, श्रुतज्ञान दूसरा केवलज्ञान है। इसके आगे अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान कुछ नहीं है। शास्त्र न लिखना पेड़ को जड़ से काटने के बराबर है। शांतिसागर जी ने स्वयं श्रुत की स्थापना फलटन में की।

समता में रहे, परन्तु दूसरों की कमियाँ स्वीकार न करें।

तीन लोक को श्रेष्ठ सिद्ध करता है वह तिलोयपण्णती ग्रंथ है। आत्म तत्त्व को जगाने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है।

सर्प में थार्मल कैमरा होता है, जिससे रात को भी दिखाई देता है स्कूल-

कॉलेज के विषय से ब्रह्माण्ड का ज्ञान नहीं होता, सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जो सत्य बताया गया उससे संपूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है। सर्वज्ञ वाणी को न जानने के कारण ही पंथ-मत भेद है।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि आत्म तत्त्व को जगाने के लिए स्वाध्याय है। ज्ञान देता है वह गुरु हैं। स्वाध्याय से असंख्यात समुद्र के पानी के बराबर कर्मनिर्जरा होती है। प्रशांत महासागर भी जैन धर्म के अनुसार उपसमुद्र है। स्वाध्याय रूपी अमृत पान से असंख्यात गुनी कर्मनिर्जरा होती है। मन टाईम-बम की तरह एकाग्रचित्त होकर असंख्यात गुनी कर्मनिर्जरा करता है जिससे 1-2 भव में मोक्ष हो जाता है। शिष्य-प्रशिष्यों को ज्ञानी गुरु की प्रशंसा करनी चाहिए। निरतिशय पुण्य से भी स्वर्ग मिल जाता है परन्तु सातिशय पुण्य से अनंत गुनी कर्मनिर्जरा होती है जिससे मोक्ष फल निश्चय है। ज्ञान का प्रत्यक्ष फल अज्ञान का नाश व ज्ञान रूपी दिवाकर का उदय होता है। न्याय से उपार्जित धन से कमाकर जो दान देता है उसकी प्रशंसा करनी चाहिए। जो परंपरा से मोक्ष का कारण है। सर्वज्ञ भगवान् की गणधर देव ने स्तुति के माध्यम से प्रशंसा की वही सहस्र नाम है।

आध्यात्मिक गुणों की ही प्रशंसा होती है। 60,000 प्रश्न गणधर, इन्द्र, ऋद्धिधारी मुनि, साधु आदि करते हैं। स्तुति का क्रम भी इसी प्रकार है। गणधर देवों से ही ग्रंथ की उत्पत्ति होती है। जितने-जितने कर्म की निर्जरा होगी उतना-उतना सातिशय पुण्य बंध होगा। आगे-आगे भगवान् की वाणी पहुँचाने के लिए साहित्य लिखना आवश्यक है। गणधर व इन्द्र मुख्य रूप से स्तुति करते हैं। पंच परमेष्ठी ख्याति-पूजा-लाभ से कोसों दूर हैं। परन्तु श्रावक अपने पुण्यार्जन के लिए पूजा, अभ्यर्चना करता है। यह इसका कर्तव्य है। नवकोटि से अंतरंग से सतत आराधना करनी चाहिए।

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने बताया कि धर्म के नाम पर पैसा कमाना या आजीविका चलाना माँ को वैश्या बनाकर पैसा कमाने के बराबर दोष है। स्व-शिष्य गुरु की पूजा आराधना, गुणानुवाद करता है जिससे अज्ञानता मिटती है कर्मनाश होता है यह साक्षात् फल है। परोक्ष फल असंख्यात गुनी कर्म की निर्जरा, संसारी दुःखों का नाश, सातिशय पुण्य से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। स्वाध्याय से तिष्वाणु भाग अर्थात् तीव्र हवा का तूफान, चक्रवात की तरह कर्मों का क्षय होता है। दूसरी धार्मिक क्रियाओं से मंद-मंद हवा की तरह कर्मक्षय होता है। स्वाध्याय से



सातादि सुप्रशस्त कर्म का बंध होता है। राजा से लेकर तीर्थकर तक का सुख अभ्युदय अर्थात् संसारी सुख है। तीर्थकर भी दीक्षा के बाद ही निःश्रेयस सुख अर्थात् मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं। कार्य का परिणाम जानने पर कार्य करने की उत्सुकता बढ़ती है, रुचि बढ़ती है। अतीन्द्रिय सुख इन्द्रिय सुख व मन के सुख से भी परे है। आत्मा का सुख शरीर में नहीं समा सकता अतः केवलज्ञान के बाद शरीर परम औदारिक बन जाता है। संपूर्ण अतिशय आत्मा में है। शरीर से ही सभी दुःख हैं। श्रुतज्ञान से अर्थात् स्वाध्याय से समता बढ़ती है। इससे भेद विज्ञान को जोड़ने वाला ज्ञान-वैराग्य बढ़ता है। आत्मा-अनात्मा का ज्ञान होता है। क्षयोपशम व ज्ञान बढ़ता है। सातिशय पुण्य बढ़ता है जिससे आध्यात्मिक बल मिलता है। श्रुतज्ञान की भावना से ज्ञान रूपी सूर्य किरणों का उद्योत मिलता है। चित्त स्वयं के वश में, इन्द्रियाँ मन के अधीन होती हैं। जो मन को मंत्रित करे, संयमित करे वह मंत्र है। सुखी होने में अंतरंग कारण मुख्य है। पुण्य की 42 प्रकृति है साता इसमें से एक है। स्वाध्याय से सम्यक् आचरण आता है। इच्छाओं से कषायों की उत्पत्ति होती है। श्रुतज्ञान से आंतरिक उज्ज्वलता के साथ-साथ बहिरंग भी विशुद्धि बढ़ती है। मन को वश में करने के लिए स्वाध्याय है। जब आत्मा का ध्यान करते हैं तब स्व में स्थिर रहते हैं। मन को मरकट (बंदर) कहा है मन चंचल होता है जिसको स्वाध्याय द्वारा स्थिर किया जाता है। जिससे मन किसी से डरता नहीं, प्रभावित नहीं होता, चंचल नहीं होता, धीरता व गंभीरता आती है। मूढ़ता मुख्य तीन है, 365 से लेकर तीन लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण है। सम्यक्त्व 10 प्रकार का भी होता है। अभव्य मिथ्यादृष्टि में भी श्रद्धान है, श्रद्धा हर जीव में है परन्तु सही न होने से सम्यक् मिथ्यात्व है।

आत्मा का सामान्य अर्थ चैतन्य है परन्तु यह अनंत गुण युक्त का अधिष्ठाता है। मेरा अधिष्ठाता मैं हूँ। हर द्रव्य में अनंत गुण, अनंत वीर्य, अनंत नय। द्रव्य ही अनेकांत है। केवली भगवान् को केवलज्ञान से व गणधर भगवान् को श्रुतज्ञान से आत्मा के अनंत गुणों का ज्ञान होता है। जीव का स्वभाव चैतन्य जैसे ताना-बाना। जैन धर्म का मूल शब्द अनेकांत धर्म है। स्याद्वादमय है। जीव अनुभव युक्त ही होता है अनुभव बिना जीव नहीं वह निर्जीव है। अनुभव बिना भाव श्रुतज्ञान नहीं होता। अनुभव ज्ञान ही बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान होता है। अनुभवविहीन होने से गलत

वस्तुओं से अधिक प्रभावित है। विज्ञापन ज्ञान होने से अनुभव ज्ञान नहीं कर पाते हैं। अनुभव ज्ञान होने से सही-गलत, सुख-दुःख का अनुभव होता है। जिस प्रकार मिष्ठान्न का वर्णन कर ले, देख ले, परन्तु जो अनुभव उसके खाने पर मिलेगा वह अन्य वर्णन से नहीं। अनुभव से मिष्ठान्न का अनुभव होता है, सबको समान अनुभव नहीं होता। मनुष्य अंधेरे में नहीं देख पाते परन्तु साँप, बिल्ली, शेर, उल्लू को अंधेरे में स्पष्ट दिखाई देता है। पशुओं की घ्राण इन्द्रिय तीव्र होने के कारण अच्छी-बुरी घटनाओं के बारे में पता चलता है। भाव श्रुतज्ञान बढ़ता-बढ़ता केवलज्ञान होता है। दिल के मध्य का भाग अंकुरित होता है जैसे ही गाठ गन्ने का बीज बनता है जैसे ही भाव केवलज्ञान बनता है। गुरुदेव कहते हैं-

जहाँ न पहुँचे रवि तहाँ पहुँचे कवि, जहाँ न पहुँचे कवि वहाँ पहुँचे अनुभवी।

धार्मिक लोग आत्मा को नहीं समझ रहे हैं परन्तु वैज्ञानिक लोग आत्मा को जानने की कोशिश कर रहे हैं। जीव के बारे में अनुसंधान कर रहे हैं। विज्ञान के अनुसार 240 करोड़ वर्ष पूर्व जीव की उत्पत्ति तथा मानव की 2 लाख वर्ष पूर्व उत्पत्ति हुई। धनुष-बाण का प्रत्यंचा का लक्ष्य तक पहुँचाना जैसे ही संपूर्ण धर्म का लक्ष्य स्व-स्वरूप आत्मा को प्राप्त करना है। स्व का अधिष्ठात्रा स्व ही है। भगवान् के 1008 ही गुण नहीं अनंत गुण होते हैं।

आत्मा नास्ति रूप है। नास्ति का अर्थ नहीं हूँ, मैं रागी, द्वेषी, कामी, क्रोधी, मन, इन्द्रिय सब रूप नहीं हूँ। अस्ति का अर्थ मैं चिदानंद, सच्चिदानंद, मन से आगे मैं हूँ। मैं अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य, बल का पिण्ड हूँ।

जिस प्रकार चावल में पत्थर निकालते हैं जैसे ही आत्मा में छिपे कर्मों को ढूँढ़-ढूँढ़कर निकालना चाहिए। दोषों से शिक्षा लो व गुणी बनो। खोटा भावी चक्रवर्ती (अतुल संपदा के धनी) सातवें नरक जाते हैं। माँसभक्षी शेर पाँचवें नरक जाता है। निगोदिया जीव पाँच पाप नहीं करते माँसभक्षी भी नहीं है फिर भी मुख्य रूप से अशुभ भाव के कारण आठों कर्म बाँधते हैं। अधिकतर लोग गुणी की ही निंदा करते हैं, पापी की प्रशंसा करते हैं। व्यक्ति पापी पेट के कारण पाप नहीं करता परन्तु भावों के, लोभ के कारण पाप अधिक करता है। अतः अशुद्ध भावों का त्याग करना मुख्य है।

दावानल अरबों वर्ष तक जलती रहे तो भी आकाश के एक परमाणु को प्रभावित नहीं कर सकती है। 13 गुणस्थान में 85 कर्म प्रकृतियों का उदय रहता है।

उसमें पाप प्रकृतियाँ अधिक रहती है। असाता वेदनीय कर्म का उदय रहता है। अरिहंत भगवान् के दानान्तराय, भोगान्तराय व वीर्यान्तराय का भी क्षय होता है। अरहंत भगवान् में अनुजीवी गुण रहते हैं। अरहंत भगवान् में चार कर्म उदय में होते हुए भी सिद्ध भगवान् की तरह गुण होते हैं। भाव प्रशस्त होते हैं। निगोदिया जीव कोई पाप नहीं करते तो भी नारकी से भी अधिक पापी है। भाव अशुद्ध होने के कारण अधिक निकृष्ट है। अशुद्ध भाव ही संसार के कारण है, आनुशैंगिक पाप मुख्य नहीं। घाती कर्म ही महान् है।

केवली, श्रुत, धर्म, देव, गुरु का अवर्णवाद करने से दर्शन मोहनीय का बंध होता है। श्रद्धा नहीं होना सब पापों की जड़ है। अज्ञानतावश गुरुदेव के साहित्य लेखन को गलत मानकर गुरु व शास्त्र दोनों का अवर्णवाद कर महान् पाप का बंध कर देते हैं। अंजन चोर जैसे महापापी, सप्त व्यसनी भी श्रद्धा से मोक्ष चले जाते हैं। धर्म का मूल श्रद्धान व संसार का मूल मिथ्यात्व है। मोह कषाय युक्त भाव अशुद्ध भाव है। भद्रबाहू अंतिम श्रुत केवली चाणक्य के आध्यात्मिक गुरु थे। एक गुण कई गुणों को लेकर आते हैं, एक दुर्गुण कई बुराइयों को साथ लेकर आते हैं। किसी भी प्रकार दान में अंतराय डालना अंतराय कर्म का बंध कराता है। अंजना सती ने पूर्वभव में 22 पल के लिए मूर्ति छुपाई थी तो उसे 22 वर्ष तक पति का वियोग सहना पड़ा।

मैं अरहंत हूँ, सिद्ध हूँ, आचार्य हूँ, उपाध्याय हूँ, साधु हूँ, अनंत गुणों का पिण्ड हूँ। मैं अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख से भरपूर हूँ। अव्याबाध, अगुरुलघुत्व गुण, सूक्ष्मत्व, अवगाहन आदि से युक्त हूँ। मैं संपूर्ण हूँ क्योंकि निश्चयनय से सब गुण मुझमें हैं। मैं नास्ति रूप भी हूँ, शून्य रूप भी हूँ क्योंकि मैं शरीर, इन्द्रिय, मन से रहित है, मेरी आत्मा राग-द्वेष से रहित है। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित हूँ, 25 कषायों से रहित हूँ, अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित हूँ। जिस प्रकार श्वेताम्बर मूर्ति शृंगार, आँगी सहित होती है परन्तु वह इन सबसे निस्पृह है वैसे ही मैं हूँ। मैं आठ मदों से रहित हूँ। जाति मद, कुल मद, रूप, धन, बल, ऐश्वर्य, तप, ज्ञान के मद से रहित है मेरी आत्मा। मैं आठों कर्मों-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय, नाम, गोत्र, आयु, वेदनीय से रहित हूँ। मैं तीन मूढ़ताओं-देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता, लोक मूढ़ता से रहित हूँ। मैं सम्यक्दर्शन के आठ अंगों से युक्त हूँ-निश्चित, निकांक्षित, निर्विचिकित्सा, उपगूहन, अमूढ़ दृष्टि, स्थितिकरण, वात्सल्य प्रभावना। मैं

6 अनायतनों से रहित हूँ। मैं अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित हूँ। मैं चिदानंद, सच्चिदानंद, ज्ञानानंद, शिव स्वरूप, सत्य, शिव, सुंदर हूँ मैं इतना सूक्ष्म हूँ कि सूई की नौक के अनंतवें भाग में भी समा सकता हूँ तथा इतना बड़ा की तीन लोक में भी लोकाकाश-अलोकाकाश में समा सकता हूँ। मैं सातों भयों से इहलोक, परलोक, वेदना, आकस्मिक, अरक्षा, मरण रहित हूँ। मैं निर्लोभी, निष्कषायी, निष्कलंक, निर्बाध, निर्मल, निरंजन, निराकुल, निर्दोष, निरहंकारी, निजानंद रसलीन हूँ। मैं संकल्प-विकल्पों से रहित हूँ। मैं स्त्रीवेद, पुरुषवेद, निपुंसकवेद से रहित हूँ।

अनुजीवी आत्मा का स्वाभाविक गुण है। धर्म द्रव्य अजीव में भी गुण है। कॉमन जेंडर-अस्ति रूप में सब है जीव, पिच्छी, कमण्डल थ्योरी ऑफ रिलीविटी। विभिन्न दृष्टि में से भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। स्वयं को धन्य मानना है। किसी भी कार्य को सिद्ध करने के लिए लक्ष्य निर्धारण आवश्यक है। अतः हमें भी आत्मा की प्राप्ति का लक्ष्य बनाना है। लक्ष्य हमारे जीवन में एक साथ गूँथे रहेंगे। धार्मिक लोग अपना लक्ष्य आत्मा को प्राप्त करने के लिए पूजा-पाठ-व्रत-अनुष्ठान आहारदान, वैयावृत्य, त्याग-संयम आदि में माला की तरह गूँथे रहते हैं। लक्ष्य बीज की तरह है वैज्ञानिक प्रकृति पर, जादूगर दूसरों पर, नेता-प्रजा पर निर्भर रहते हैं। छोटा चुम्बक छोटे-छोटे लोहे के टुकड़ों को ही आकर्षित करता है व बड़ा बड़े टुकड़ों को। इसी प्रकार बड़ा लक्ष्य बड़ा फल देता है इसको प्राप्त करने हेतु प्रयत्न, पुरुषार्थ भी अधिक करता है।

जीव (आत्म द्रव्य) अविकल्प नय है। द्रव्यनय, भविष्य को बताते हैं। भावी प्रज्ञापन नय से वर्तमान साधु अरहंत सिद्ध बनेंगे। भव्य भावी भगवान् है। सफलता प्राप्त करने का पहला सूत्र गलती स्वीकार करना। प्रतिप्रश्न करने से ज्ञान बढ़ता है। चारित्र मोहनीय के उदय से जीव आत्मानुभव नहीं कर पाता व ज्ञानावरणीय कर्म का भी उदय रहता है। स्व-शुद्धात्मा के ज्ञान के लिए आचार्य भौतिक उदाहरण देते हैं। नक्शा कम्पास केवल मार्गदर्शक होते हैं वैसे ही उदाहरण है। स्व-शुद्धात्मा के अनुभव होने पर इनकी आवश्यकता नहीं रहती है।

**सर्वगत नय**-आत्मा सर्व लोक-अलोक में व्याप्त है। आत्मा में अनंत गुण होने के कारण सर्वगत होता है। लोक-अलोक ज्ञान की अपेक्षा से सर्वगत व आत्मप्रदेश की अपेक्षा असर्वगत है। आँख बंद करने से चक्षु की क्षमता कम नहीं हुई।

परन्तु असर्वगत प्रदेश की अपेक्षा सीमित है। कथंचित् शून्य नय से आत्मा शून्य है। शरीर, कर्म, मन, इन्द्रियाँ से शून्य है। एकत्व भावना मुख्य है मैं एक हूँ। एकत्व भाव ही शून्य अवस्था है। हम स्वयं अन्य से भिन्न होंगे तब सिद्ध होंगे। अंदर-बाहर से पूर्ण है सिद्ध। शब्द ब्रह्म से परम ब्रह्म ज्ञान होता है।

**मैथुन**-मैथुनस्य भाव मैथुन है। आत्मा के साथ राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों का एकमेक होना भी मैथुन है। अरहंत को भी शैलेष नहीं कहा गया है क्योंकि 18,000 भेद शील के 14वें गुणस्थान में पूरे होते हैं। आत्मा स्वयं की अपेक्षा पूर्ण है। अन्य की अपेक्षा खाली होते जायेंगे स्वयं में पूर्ण होते जायेंगे। पर से नास्ति होने पर स्वयं में अस्ति हो जायेंगे। सभी भगवान् स्वयंभू हैं। अग्नि में ईंधन डालने पर भी ईंधन भी एक अग्नि रूप हो जाते हैं। आत्मा में अनंत गुण होते हुए भी आत्मा एक है। आत्मा अद्वैत-ज्ञान-गुण, पर्याय की अपेक्षा द्वैत-ज्ञान-ज्ञेय, प्रदीपवत् 84,00000 लाख चारित्र के उत्तर गुण है।

## “गुरुवर का आदर्श स्वरूप”

-विजयलक्ष्मी गोदावत

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुवर का जीवन आदर्श स्वरूप हैं। गुरुवर को देखकर हम अपने स्वयं के गुण-दोष वैसे ही देख सकते हैं जैसे दर्पण में अपना प्रतिबिंब। जिस प्रकार दर्पण हमें कुछ कहता नहीं कि तुम्हारा चेहरा कैसा है? क्या कमी हैं? हमें स्वयं ही देखकर इसे व्यवस्थित व ठीक करने की जरूरत है। वैसे ही हमारे गुरुदेव हमें कुछ नहीं कहते केवल स्वाध्याय के माध्यम से सत्य का दिग्दर्शन कराते हैं। हमें क्या उचित क्या अनुचित यह समझते हुए हमारे भावों में निर्मलता लाने की आवश्यकता है। गुरुदेव सब जीवों को शक्ति रूप में भगवान् के बराबर समझते हैं। गुरुदेव कहते हैं छोटे-बड़े सभी जीवों में आत्मा को परमात्मा बनाने की शक्ति छुपी हुई है। गुरुदेव में यह जागृत हो गई है अन्य में सुषुप्त अवस्था में है। जिस प्रकार बीज को उपर्युक्त वातावरण मिलने पर वह वृक्ष बन जाता है इसी प्रकार जीव को धर्म व गुरु का सहारा मिल जाये तो वह जिनेन्द्र बन जाता है। अधिकतर पूजा-पाठ में पूजन-भक्ति से भगवान् सब कुछ देंगे यह वर्णन मिलता है। मुझे तो गुरुदेव के स्वाध्याय के ज्ञान से ज्ञात हुआ कि भगवान् भक्तों को कुछ नहीं देते वह तो सिद्धालय

में विराजमान हैं, परन्तु इनकी पूजा-आराधना से जो हमारे भावों में विशुद्धि होती है उसके फलस्वरूप कर्मों की निर्जरा होती है व पुण्य बढ़ता है अतः हमारे कार्य सिद्ध होते हैं। बहुत सारी पूजाओं में आत्मा को परमात्मा बनाना तथा उनके गुण प्राप्त करने की बात भी कही गई है। परन्तु गुरुज्ञान रूपी टॉर्च न होने के कारण अज्ञान रूपी अंधकार में पास पड़ी हुई वस्तु भी स्पष्ट नहीं दिखाई देती। गुरुदेव कहते हैं तुम लोग उस गरीब की तरह हो जो जिस स्थान पर सोया है उसके नीचे ही खजाना है। हमारे पास भी आत्मा का ज्ञान रूपी खजाना है परन्तु मोह, राग, द्वेष, कषायों के कारण वह दिखाई नहीं दे रहा है। गुरुदेव आत्मप्रदेशों के बारे में बताते हैं कि वह जिस पर्याय में जीव जाता है उसी रूप रबर की तरह छोटा-बड़ा हो जाता है जैसे-चिंटी, हाथी, देव। गुरुदेव कहते हैं हम पूजा में भगवान् के गुणों का गुणगान करते हैं ताकि वह गुण हमें भी प्राप्त हो परन्तु हम ऐसा कोई चिन्तन नहीं करते, हम केवल एक कार्य की तरह इसे कर देते हैं, इसमें क्या लिखा है? क्या भाव है? कुछ सोचते नहीं, इसे सोचने में दूसरी पूजाएँ नहीं हो पायेगी, ऐसी सोच होती है। एक पूजन भी समझकर भक्ति-भावपूर्वक करने से 10 पूजाओं से भी अधिक फल देगी। वैसे ही पाठ भी जो हमें आते हैं वही रोज करते हैं। इसमें भी अलग-अलग पढ़ने चाहिए। स्वाध्याय भी केवल प्रथमानुयोग जिसमें कथा-कहानी होती है उसी का करते हैं, परन्तु इसके आगे आगम बहुत विस्तृत हैं। गुरुदेव का साहित्य भी शास्त्र ही है, इसमें तो बड़े-बड़े महान् ग्रंथों का सार छुपा है अतः सभी प्रकार के ग्रंथों को पढ़कर हमें अपने अज्ञान को दूर करना चाहिए। स्वाध्याय अधिक करने पर सब मतभेद भी मिट जायेंगे। गुरुदेव कहते हैं हमें किसी से अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। हम अपनों से किसी प्रकार की आशा रखते हैं और वह नहीं होता तो अनेक संकल्प-विकल्प बढ़ते हैं। किसी की अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। किसी की अपेक्षा करे व कभी उसी की भी आवश्यकता पड़ सकती है। अपेक्षा करने से उसकी आत्मा को कष्ट पहुँचता है। क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धांत स्वरूप वह हमें ही कष्ट देगा। किसी भी कार्य या जीव की प्रतीक्षा करने पर वह थोड़ा आगे-पीछे आने पर संकल्प-विकल्प होगा अतः हमेशा तीनों से दूर रहना चाहिए।

दिनांक 4 जनवरी, 2017

## “टी.वी. का दुष्परिणाम”

-विजयलक्ष्मी गोदावत

“ध्यानमूलं गुरोः मूर्तिः पूजामूलं गुरुपादं।

मंत्र मूलं गुरुवाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा॥”

वर्तमान समय में टेलीविजन का बोलबाला है। अमीर हो या गरीब सबके घरों में टी.वी. अवश्य मिलेगा। इसके बिना घर की कल्पना करना असंभव है। वर्तमान में हम जो टी.वी. देख रहे हैं उसका आविष्कार स्कॉटलैण्ड के वैज्ञानिक जॉन एल. बेयर्ड ने किया था। भारत में सर्वप्रथम टी.वी. केन्द्र की स्थापना 1951 में तथा सार्वजनिक प्रसारण 1965 में हुआ। वर्तमान में टी.वी. एक अभिशाप बन गई है। टी.वी. के कारण (1) हमारी मूल भारतीय संस्कृति का लोप होता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के जो अवगुण हैं वह हमारे आचरण में बढ़ रहे हैं। क्योंकि मानव प्रकृति है कि वह बुराइयों को जल्दी सीख लेता है। भारतीय संस्कृति में बड़ों का सम्मान होता था, पैर छूकर आशीर्वाद लिया जाता था, परन्तु वर्तमान में इन संस्कारों का तो लोप ही हो गया है। टी.वी. के चलते हमारी जीवनशैली में भी पाश्चात्य संस्कृति का इतना प्रभाव आ गया है कि हमारा खान-पान, रहन-सहन सब उन्हीं के अनुसार हो गया है।

(2) “बच्चे फैशन की ओर अग्रसर”-टी.वी. के कारण बच्चे फैशन की ओर बढ़ रहे हैं व आध्यात्म से दूर जा रहे हैं। टी.वी. में जो विज्ञापन आता है वैसी वस्तुओं का उपयोग करना जैसे ही कपड़े पहनना। छोटे-छोटे कपड़े पहनकर अंग प्रदर्शन करना। जिससे नारी स्वयं अपना अपमान कर रही हैं। टी.वी. के हीरो-हिरोइन को वास्तविक हीरो समझते हैं और स्व को उनके जैसा बनाना चाहते हैं। वे हीरो का अर्थ भी नहीं समझते। **कनकनन्दी गुरुदेव कहते हैं जो आत्मा पर विजय प्राप्त करे वह हीरो है।** टी.वी. के माध्यम से डिस्को, क्लब, किटी पार्टी आदि उनके दैनिक जीवन के अंग बन गये हैं परन्तु मंदिर जाने व गुरुओं के पास जाने के लिए समय नहीं है। टी.वी. के कारण से बच्चे जैन धर्म की ए, बी, सी, डी भी नहीं जानते हैं।

(3) **बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास अवरुद्ध**-टी.वी. के कारण बच्चे सभी प्रकार के मैच चाहे क्रिकेट हो, फुटबॉल हो, बैडमिंटन हो बैठे-बैठे देखते हैं जिससे उनका शारीरिक मूवमेंट बिल्कुल नहीं होता। बैठे-बैठे देखने से

डायबिटीज, मोटापा, ब्लडप्रेसर, एसीडीटी आदि कई रोग बच्चों से लेकर बड़ों तक में हो जाते हैं। यहाँ तक की बच्चे गुल्लीडंडा, खो-खो आदि को भी भूल गये हैं। पहले आँख मिचौनी, पकड़ा-पकड़ी, लंगड़ी आदि कई खेल खेलने से शारीरिक व्यायाम होता था, परन्तु अब कोई खेल पसीना बहे जैसे नहीं खेलते केवल टी.वी. में देखते रहते हैं। गुरुदेव कहते हैं कि बच्चों को उछल-कूद व मिट्टी में खेलना आवश्यक है तभी उनका बौद्धिक विकास होगा, साहस के कार्य करना सीख सकते हैं। परन्तु वर्तमान में टी.वी. के कारण व्यक्ति को घर से बाहर निकलने की फुरसत भी नहीं व मिट्टी को छूने देना भी नहीं चाहते है।

(4) **बलात्कार, चोरी, छेड़छाड़, अपहरण आदि का बढ़ना**-टी.वी. में क्राईम पेट्रोल, सी.आई.डी. आदि कई इस प्रकार के शो बताये जाते है जिससे समाज में अराजकता अधिक बढ़ी है। इन शो को देखकर लोगों के दिमाग में नये-नये आइडिया, नई-नई तकनीक मिलती है जिससे वो सारे गलत कार्य करना सीखते हैं। आये दिन बलात्कार, अपहरण आदि घटनाएँ सुनने मिलती हैं वह इस टी.वी. का ही दुष्परिणाम है। गलत-गलत चीजों को प्रदर्शित कर उन्हें गुमराह किया जाता है। बच्चे इन्हीं चीजों को सही मानकर यही करने लगते हैं। कुछ हद तक बलात्कार बढ़ने का कारण यह भी है कि टी.वी. में देखकर बच्चियाँ छोटे-छोटे कपड़े पहनती हैं जिससे बच्चे आकर्षित होकर ऐसे गलत कार्य करते हैं।

(5) **बाल्यावस्थाओं में ही कामुक होना**-टी.वी. सीरियल व फिल्मों में अश्लील दृश्य दिखाये जाते है जिससे बच्चे कम उम्र में ही बड़े हो जाते हैं। भाव विकृत होने से सही-गलत, उचित-अनुचित का दिमागी संतुलन खो बैठते हैं, जिससे अकरणीय कार्य भी कर बैठते हैं।

(6) **दृष्टि दोष**-टी.वी. अधिक देखने के कारण कम उम्र में ही नजर कमजोर हो जाती है। बच्चे होर शो देखते रहते है जिससे रात को भी डरावने सपने देखते है व मानसिक संतुलन खो बैठते हैं।

(7) **पढ़ाई में बाधा**-बच्चे सारा दिन टी.वी. देखना पसंद करते है जिससे पढ़ाई में एकाग्रचित्तता नहीं रहती है क्योंकि टी.वी. देखते-देखते होमवर्क करते है। स्वयं का बौद्धिक विकास नहीं हो पाता क्योंकि जितना गुरु कहते है वहीं पढ़ते हैं, जिससे उनका भविष्य अंधकारमय हो जाता है।